जनवरी - जून 2001 वर्ष : 33 ✻ अंक : 1/2

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

बीसवीं शताब्दी का जीवित आइंस्टीन

दार्शनिक स्टीफन हॉकिंग

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

परिषद हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार हेतु नियमित रूप से त्रैमासिक पत्रिका "वैज्ञानिक" का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है ।

परिषद की सदस्यता एवं "वैज्ञानिक" पत्रिका का शुल्क इस प्रकार है :

	परिषद सदस्यता (रु. में)			वैज्ञानिक शुल्क (रु. में)
	एक वर्ष	आजीवन	संरक्षक	एक वर्ष
व्यक्तिगत	50	400	5000	50
संस्थागत	100	1000		100

- "वैज्ञानिक" पत्रिका की कोई आजीवन सदस्यता / शुल्क नहीं है ।
- वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को "वैज्ञानिक" निःशुल्क भेजी जाती है ।
- सभी शुल्क **हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद** के नाम से केवल **डिमांड ड्राफ्ट (मुंबई)** द्वारा ही भेजें । **मुंबई** से बाहर के चेक, मनीआर्डर एवं पोस्टल आर्डर द्वारा भेजा शुल्क स्वीकार नहीं होगा ।
- कृपया शुल्क के साथ अपना निजी विवरण इस पत्रिका में दिये गये आवेदन पत्र के प्रारूप के अनुसार भेजें ।
- संरक्षक सदस्य, यदि चाहें तो, उनका एक विज्ञापन प्रतिवर्ष "वैज्ञानिक" में निःशुल्क छापा जा सकता है ।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 2000 के परिणाम

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद तथा राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा प अ केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित 'डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2000' के परिणाम इस प्रकार हैं :-

: सामान्य श्रेणी :

प्रथम पुरस्कार (2000 रु) : **डॉ. कपूर मल जैन,** उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, पं. रविशंकर नगर, कलिया सोत बांध, कोलार रोड, पो. बॉ. नं. 588, भोपाल - 462 016 (म. प्र.)

द्वितीय पुरस्कार (1500 रु.) : **कु. इंदु बुधानी,** द्वारा - डॉ. गोविंद सिंह रजवाड़, रीडर, वनस्पति विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर कॉलेज, ऋषिकेश -249 201 (उत्तरांचल)

तृतीय पुरस्कार (750 रु) : **श्रीमती उर्मिला तिवारी,** टाइप - IV-1 ऑफीसर क्वार्टर्स, भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान, नामकुम, रांची - 834 010 (झारखंड)

प्रोत्साहन पुरस्कार (500 रु) -
1. **डॉ. राज किशोर,** डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद -224 001 (उ. प्र.)
2. **कु. आसावरी मराठे,** लेसर एवं प्लाज्मा तकनीकी प्रभाग, भा प अ केंद्र , मुंबई -400 085.
3. **डॉ. साहिब सिंह एवं श्री एन. एस. त्यागी,** केंद्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, सी. एस. आई. आर., रुड़की -247 667 (उत्तरांचल)
4. **कु. गीता चटर्जी एवं कु. मीता चटर्जी,** द्वारा श्री प्रकाश चटर्जी, 'रेबा निवास,' 68/138 नेहरू मार्ग, आशुतोष नगर, ऋषिकेश - 249 201(उत्तरांचल)

: ऐसे प्रतियोगी जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है :

प्रोत्साहन पुरस्कार (500 रु) -
1. **डॉ. अनिल बी. बलसंगकर,** राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, दोना पौला, गोवा -403 004.
2. **डॉ. सुबोध कुमार दत्ता,** अध्यक्ष फ्लावर कल्टिवेशन डिविजन, नेशनल बॉटेनिकल रिसर्च इंस्टिट्यूट, सी एस आई आर, पोस्ट बॉक्स नं. 436, लखनऊ -226 001 (उ. प्र.)

वैज्ञानिक संगोष्ठी

कृषि प्रौद्योगिकी - नयी दिशाएं

3-4 सितंबर 2001

स्थल

केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान सभागृह
शिमला

आयोजक

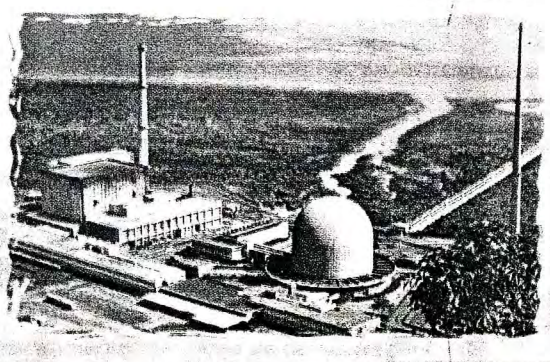

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
मुंबई- 400 085

केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान
शिमला 171001
(हिमाचल प्रदेश)

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

भारत द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् देश की संविधान सभा ने 14 सितंम्बर 1949 के दिन हिंदी को भारतीय गणतन्त्र की राजभाषा के रुप में स्वीकार करने का ऐतिहासिक निर्णय लिया । इस निर्णय को भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र ने पूरी निष्ठा से कार्यान्वित किया है । हालांकि इस केन्द्र की गतिविधियां पांचवे दशक के मध्य से शुरू हो चुकी थीं, परन्तु मुख्य कार्य 10 वर्ष पश्चात् आरंभ हुआ जब मुम्बई में कई स्थानों पर स्थित प्रयोगशालायें, ट्राम्बे में स्थानांतरित हुईं । करीब-करीब उसी समय इस केन्द्र के वैज्ञानिकों एवं अभियंताओं के प्रयास से सन् 1968 में **हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद** का गठन हुआ । यह हिंदी में प्रगत वैज्ञानिक साहित्य को लोकप्रिय करने का **प्रथम कदम** था । तदोपरांत परिषद पिछले तीन दशकों से हिंदी के प्रयोग, प्रचार एवं प्रसार के लिये सतत् योगदान दे रही है ।

परिषद अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक त्रैमासिक पत्रिका 'वैज्ञानिक' का नियमित प्रकाशन, अखिल भारतीय लेख प्रतियोगिता का वार्षिक आयोजन, वैज्ञानिक शब्दावलियों का निर्माण, वार्ताओं का आयोजन एवं विभिन्न वैज्ञानिक व लोकप्रिय विषयों पर मुंबई तथा देश के विभिन्न भागों में संगोष्ठियों का आयोजन निरंतर कर रही है । अब तक विज्ञान के प्रगत विषयों पर निम्न संगोष्ठियां आयोजित की जा चुकी हैं ।

1989	भोपाल	नाभिकीय ऊर्जा	1996	नैनीताल	इलक्ट्रॉनिक उद्योग में प्रगति
1990	इन्दौर	विज्ञान की भावी दिशाएं	1997	गोवा	आर्थिक विकास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का योगदान
1992	पटना	परमाणु ऊर्जा एवं पदार्थ	1998	जोधपुर	पर्यावरणीय समस्याएं एवं उपकरण विकास
1994	हैदराबाद	नाभिकीय ऊर्जा एवं स्वचालन	2000	मैसूर	वैज्ञानिक एवम् तकनीकी में अनुसंधान के अग्रणी क्षेत्र
1995	पुणे	ऊर्जा एवं पर्यावरण			
1996	वडोदरा	उद्योग में संक्षारण नियंत्रण			

केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान

भारत में ऑपचारिक तौर पर आलू अनुसंधान के क्षेत्र में कार्य, 1 अप्रैल 1935 में कृषि अनुसधान संस्थान, नई दिल्ली के अधीन, आरम्भ हुआ । केन्द्रीय आलू अनुसंधान की स्थापना अगस्त 1949 में पटना में हुई । 1956 में संस्थान का मुख्य कार्यालय पटना से शिमला स्थानांतरित कर दिया गया । इसका मुख्य कारण शिमला का प्रदूषण रहित वातावरण था । 1971 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने अखिल भारतीय आलू सुधार परियोजना प्रारम्भ की । गत 6 दशकों से केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान आलू के विकास व उपयोग-विस्तार के कार्य में जुटी हुई है । संस्थान के मुख्य उद्देश्यों में आलू की उत्पादकता व उपयोग को तकनीकी दृष्टि से बढ़ावा देना, संस्थान द्वारा विकसित आलू की विभिन्न किस्मों का उत्पादन, आलू उत्पादन में आने वाली क्षेत्रीय समस्याओं का निवारण, लक्ष्य प्राप्ति के लिये राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सहयोग, इत्यादि प्रमुख है ।

संस्थान की उपलब्धियों में आलू की रोग प्रतिरोधी 35 किस्मों का विकास, हर वर्ष लगभग 2600 टन प्रजनक बीज तैयार करना, विभिन्न जलवायु वाले क्षेत्रों के लिये अनुकूल फसल प्रणालियों का विकास, आलू की खेती के लिये यंत्रीकरण हेतु मशीन व औजारों का निर्माण, इत्यादि प्रमुख है । आशातीत प्रगति स्वरुप, सस्थान के 23 केन्द्र देश के विभिन्न भागों में कार्यरत है । संस्थान प्रशिक्षण एवम् शैक्षणिक कार्यक्रमों का संचालन भी करती है ।

शिमला अंग्रेजों के समय भारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी रहा है । शिमला समझौता तो सर्व विदित है । संगोष्ठी के विषय का चुनाव देश की कृषिप्रधानता एवम् शिमला के समीपवर्ती क्षेत्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किया गया है । हमें विश्वास है कि इस संगोष्ठी में प्रस्तुत वार्ताओं एवम् परस्पर विचार-विमर्श से कृषि-क्षेत्र से जुड़े उद्यागों, संस्थाओं व जनता को अवश्य प्रोत्साहन मिलेगा ।

संगोष्ठी में प्रख्यात विशेषज्ञों द्वारा प्रस्तावित वार्ताएं :

- भारत में आलू का विकास
  – डॉ. जी. एस.शेखावत
- पौधों की बीमारियों के सामाजिक, आर्थिक प्रभाव
  – डॉ. एस. एम. पॉल खुराना,
- परमाणु ऊर्जा एवम् खाद्य परिरक्षण का भारतीय कार्यक्रम
  – डॉ. डी. आर बोंगीरवार
- कृषि में प्रतिबिम्ब प्रक्रण
  – श्री एच. के. कौरा
- आनुवंशिकी परिवर्तित कृषि उत्पाद: विकास व विवाद
  – डॉ. एस. के. महाजन
- ऊतक संवर्धन : नये आयाम
  – डॉ. वी. ए. बापट
- कृषि प्रौद्योगिकी: अनुसंधान एवम् विकास की वर्तमान स्थिति
  – डॉ. एस. सी. डिसूजा
- विकिरण जैविकी,
  – डॉ. के.पी. मिश्रा
- मशरूम:एक आदर्श आहार
  – डॉ. आर.एन. वर्मा
- आधुनिक कृषि: औषधि उत्पादन
  – डॉ. के.बि.सैनिस
- भूमंडलीय तापन का कृषि पर प्रभाव
  – डॉ. एन.पी.सुकुमारन
- वनों के संदर्भ में जैव तकनीकी का विकास
  – डॉ. पी.के.खोसला
- फसलों का विकास एवम् संरक्षण: नाभिकीय तकनीकें
  – डॉ. राजनारायण पांडेय
- विकिरण संरक्षण: शाक व मांस उत्पादकों के लिये एक सुरक्षित व सस्ती प्रक्रिया
  – डॉ. बृजभूषण

पंजीकरण

• संस्था द्वारा नामांकित प्रतिभागी	नि:शुल्क
• विद्यार्थी	रु.५०/-
• शैक्षणिक संस्थान एवम् हि.वि.सा.प. के आजीवन सदस्य	रु.२००/-

आवास व्यवस्था

शिमला के बाहर से आने वाले प्रतिभागियों के लिये सीमित आवास व्यवस्था विचाराधीन है। इच्छुक महानुभाव अपनी आवश्यकता के लिये 25 आगस्ट, 2001 तक स्थानीय संयोजक से संपर्क करें।

संयोजक

डॉ. सुधीर चन्द्र सभरवाल

तकनीकी भौतिकी एवम् प्रोटोटाइप इंजीनियरिग प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुम्बई - 400 085
दूरभाषा: 022- 5592839 फॅक्स: 022-5505151

स्थानीय संयोजक

डॉ. एस.एम. पॉल खुराना

केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला
दूरभाषा: 0177- 225079 फॅक्स: 0177-224460

सलाहकार समिति

- **डॉ. अनिल काकोडकर** – अध्यक्ष
  अध्यक्ष, परमाणु ऊर्जा आयोग एवं सचिव परमाणु ऊर्जा विभाग
- **श्री बी. भट्टाचार्जी**
  निदेशक, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
- **डॉ. एस .के. सिक्का**
  निदेशक, परमाणु एवम् संघनित पदार्थ भौतिकी वर्ग, भा. प. अ. कें.
- **श्री ए. के. आनंद**
  निदेशक, रि.प.वर्ग एवम् त.स.व अं.स.वर्ग,भा. प. अ. कें.
- **श्री के. बालू**
  अध्यक्ष, केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद तथा इ. पु. व. ना. अ. वर्ग, भा. प. अ. कें.
- **श्री ॲन्टोनी डिसा**
  अध्यक्ष, राज भाषा कार्यान्वयन समिति व नियंत्रक भा. प. अ. कें.
- **डॉ. जी. एस. शेखावत**
  निदेशक, केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला 171 005 हिमाचल प्रदेश
- **डॉ. चंद्रिका प्रसाद सिंह यादव**
  उपकुलपति, राजस्थान कृषि विश्व विद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)
- **प्रोफेसर कीर्ति सिंह**
  सचिव, राष्ट्रीय कृषि विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली
- **डॉ. के. आर. कौडल**
  पादप जैव तकनीकी, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110 001
- **डॉ. सी. पुष्पांगधन**
  निदेशक, राष्ट्रीय वनस्पति विज्ञान अनुसंधान संस्थान लखनऊ
- **श्री सुरेन्द्र कुमार शर्मा**
  अध्यक्ष, हि.वि.सा.प व
  निदेशक, रिएक्टर वर्ग एवम् इन्जिनियरिंग सेवा वर्ग, भा. प. अ. कें.

आयोजन समिति

- डॉ. अशोक कुमार सूरी
- डॉ. डी आर बोंगीरवार
- डॉ. एस के महाजन
- डॉ. एस एफ डी सूजा
- डॉ. के बि सैनिस
- डॉ. एस पी गर्ग
- डॉ. विजय कुमार
- श्री हरीश कुमार कौरा
- श्री रमापद चौधुरी
- डॉ. एच एस कुशवाहा
- श्री रमेशचंद्र पंत
- श्री स्वराज कुमार अग्रवाल
- श्री नंद लाल सोनी
- श्री राम प्रसाद
- श्री गोरा चकवर्ती
- डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
- श्री रामचरण शर्मा
- डॉ. राजनारायण पांडेय
- डॉ. एस सी सभरवाल

स्थानीय आयोजन समिति

- डॉ. एस. एम. पॉल खुराना
- डॉ. एच. सी. शर्मा
- डॉ. एस. एस. लाल
- डॉ. एस. क. पांडेय
- डॉ. वी. के. चंदेला

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष 33 अंक 1/2

जनवरी-जून 2001

: व्यवस्थापन मंडल :

श्री गोरा चक्रवर्ती
(संयोजक)

डॉ. अशोक कुमार सूरी
श्री रमेश चंद्र पंत
श्री नंद लाल सोनी
श्री कुलवंत सिंह
श्री राजेश कुमार

: संपादन मंडल :

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
(संयोजक)

श्री हरिओम मित्तल
डॉ. राज नारायण पांडेय
डॉ. भूपेंद्र सिंह तोमर
डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला

कार्यालय

"वैज्ञानिक", हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल कांप्लेक्स
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
मुंबई - 400 085

संपादकीय 3

लेख

1. श्वासरोग के विकास में एलर्जी की भूमिका 5
   - अखिलेश कुमार तिवारी

2. भूकंपों का वैज्ञानिक पहलू 14
   - योगेंद्र सिंह भदौरिया, फाल्गुनी रॉय एवं जी. जयचंद्रन नायर

3. एड्स एक जानलेवा रोग : जानकारी एवं बचाव 26
   - निमेश चंद्र मिश्रा एवं अरविंद सिंह नेगी

4. पारिभाषिक शब्दावली 32
   - डॉ. दिनेश मणि

विज्ञान कहानी

1. मेरी कहानी, मेरी जुबानी - एक उपग्रह 37
   - काली शंकर

वैज्ञानिक परिचय

1. डॉ. स्टीफेन हॉकिंग्स 49
2. डॉ. अब्दुल कलाम 52

टिप्पणियां

1. भोजन के पोषक तत्त्व कैसे बनाये रखें ? 54
   - प्रकाशचंद्र अवस्थी

2. क्यों चली जाती है हमारी याददाश्त ? 55
   - डॉ. गणेश कुमार पाठक

3. 'क्लोनिंग' से बना हमशक्ल 56
   - डॉ. गणेश कुमार पाठक

4. लद्दाख में पौष्टिक तत्त्वों से भरपूर जड़ वाली सब्जियाँ 58
   सुरेंद्र सिंह

5. लद्दाख में पत्तागोभी की वैज्ञानिक खेती 60
   सुरेंद्र सिंह

● "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

● "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं ।

● "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा ।

'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं । परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार ली गयी है ।

6. प्राणी जगत के लिए हानिकारक मदकारी पौधा : भांग 61
सुरेंद्र सिंह

7. ओजोन-क्षरण से पृथ्वी के विनाश का खतरा 62
- उदय वीर सिंह

8. विद्युत आपूर्ति का वैकल्पिक स्रोत - बैटरी इन्वर्टर 63
- उदय वीर सिंह

9. बायीं करवट सोइए, पेट की जलन से बचिए 64
- शाहआलम सिद्दीकी

विज्ञान समाचार
● भा. प. अ. केंद्र से 66
● अन्य विज्ञान समाचार 69

यंत्र पहेलियां 36
कुछ पहेलियां 73
कुछ फूल : कुछ कांटे 74
एड्स दे रहा दस्तक 77
पूर्व प्रकाशित अंकों की अनुक्रमणिका (2000) 78

लेखकों से निवेदन

"वैज्ञानिक" हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें :

- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाये,
- लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य,
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें,
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ कर काग़ज के एक ओर ही लिखें,
- विषय वस्तु समझाने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद काग़ज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अंत में संलग्न कर दें,
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जायेंगी ।

- संपादक

संपादकीय

विशुद्ध विज्ञान क्षेत्रों को प्रोत्साहन आवश्यक

विज्ञान या यूं कहिए कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण जीवन के सही मार्गदर्शन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इससे जीवन की सार्थकता भी बनती है। सार्थक जीवन निर्वाह के लिए मानसिक, बौद्धिक एवं शारीरिक आवश्यकताएं जरूरी होती हैं। इन सभी को नियंत्रित करता है विज्ञान। आज विश्व ने वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति का जो परिदृश्य हमारे सामने प्रस्तुत किया है उस तक पहुंचने में विशुद्ध यानी मौलिक विज्ञान ने अहम् भूमिका निभायी है। हालांकि आज इस ओर रुझान में काफी कमी आयी है। फलस्वरूप बौद्धिक वर्ग का श्रेष्ठ भाग आज उस ओर अधिक आकर्षित हो रहा है जिसमें उसे कार्य करने का मौका मिल रहा है और जहां पर वह अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर एक खुशहाल जीवन व्यतीत करने के साधन जुटा पा रहा है। वस्तुतः आज की सोच व्यापारिक दृष्टिकोण से प्रेरित है और अधिक से अधिक लोगों को इस दृष्टि से सोचने को भी बाध्य कर रही है।

यदि हम बीसवीं सदी का उदाहरण देखें तो पिछले पचास वर्षों में विशुद्ध विज्ञान की ओर रुझान विश्व की घटनाओं से प्रभावित होता रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति, ट्रांजिस्टर की खोज, अंतरिक्ष उड़ान में सफलता, शीत युद्ध की समाप्ति, बर्लिन दीवार का हटना इत्यादि घटनाओं ने विज्ञान के रुझान को अपनी-अपनी तरह से प्रभावित किया। 1970 तथा 1990 के दौरान विश्व में विशुद्ध शोध में लगे विज्ञानियों के लिए यथोचित कार्यों में कमी हुई जिसका प्रभाव अगले 10 वर्षों तक देखने को मिला। अर्थशास्त्र के नियमानुसार (मांग एवं उपलब्धता से संबंधित) जब वैज्ञानिकों की संख्या बढ़ी तो अवसर कम हो गये और जब वैज्ञानिकों की संख्या कम थी तो मांग अधिक रही। यहां पर यह बात अच्छी रही कि समय के साथ साथ मूल स्तर भी ऊपर उठता गया जो निसंदेह प्रगति का एक सूचक है।

आज जहां प्रौद्योगिकी सबसे अहम् नजर आ रही है और उस ओर रुझान भी बढ़ता जा रहा है, वहीं मौलिक विज्ञान की आवश्यकता को कम नहीं आंका जाना चाहिए। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जिस सूचना तकनीकी, नैनो तकनीकी, नाभिकीय तकनीकी, अंतरिक्ष तकनीकी जैसी विशाल इमारतों के क्षेत्र में हम प्रवेश कर चुके हैं उनका मूलाधार विशुद्ध विज्ञान ही है। इनका श्रेय आइंस्टीन, न्यूटन, शॉक्ले, बारडीन, बोस, रमण, इसाकी जैसे कई मौलिक विज्ञान शास्त्रियों को ही जाता है जिन्होंने इन विशाल इमारतों की नींव रखी।

पिछले कई वर्षों से यह देखने में आ रहा है कि देश-विदेशों के विलक्षण बुद्धि के छात्र-छात्राएं मौलिक विज्ञान विषयों को छोड़कर इंजीनियरी के क्षेत्र की ओर अधिक आकर्षित हो रहे हैं। फलस्वरूप विशुद्ध विज्ञान के क्षेत्र एकदम गौण बनते जा रहे हैं। स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर अच्छे विद्यार्थियों की कमी निरंतर बढ़ती जा रही है जो एक काफी चिंता का विषय है। इस स्थिति को देखते हुए विश्व के कर्णधार वैज्ञानिक काफी निराश हुए और हो रहे हैं। इस स्थिति से निपटने के लिए विश्व में कई स्तर पर विचार विमर्श एवं शोध हुए एवं चल रहे हैं। युवा वैज्ञानिकों से उनके विचार मांगे गये कि किस प्रकार अच्छी बुद्धिमता के विद्यार्थियों को इस ओर आकर्षित किया जाये। पाठ्यक्रमों को किस प्रकार पुनः संजोया जाय कि मौलिक विज्ञान का क्षेत्र आकर्षक बन सके। सबसे अहम् पहलू जो सामने आया वह था - शिक्षा/डिग्री हासिल करने के बाद जीवन क्षेत्र में प्रवेश करते समय नौकरी (जॉब) के अवसरों की स्थिति। इन विद्यार्थियों को उनके मेहनत के अनुरूप कार्य क्षेत्र उपलब्ध कराना अत्यंत आवश्यक है जो उनको एक

अच्छे जीवन की शुरूआत का विश्वास दिला सके। काफी समय से, वर्तमान उद्योगों में एक इंजीनियर को विशुद्ध विज्ञान के पीएच. डी. के मुकाबले अच्छे अवसरों की उपलब्धता के साथ-साथ अच्छी सामाजिक स्वीकार्यता का प्रचलन चला आया है।

इस दिशा में अब कुछ बदलाव दिख रहा है। उद्योगों में इस बात का अहसास हुआ है कि विशुद्ध विज्ञान का पीएच. डी. निसंदेह उच्च बौद्धिकता का व्यक्ति होता है जो समय पड़ने पर वह सभी कर सकता है जो एक इंजीनियर। इसलिए अब औद्योगिक क्षेत्रों में उच्च केलिबर (प्रतिभा) के पीएच. डी. नियुक्त कर उद्योगपति अधिक लाभान्वित हो रहे हैं। यही दिशा परिवर्तन का एक संकेत दिख रहा है। ऐसे मोड़ पर अब यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर के विश्वविद्यालयों के मौलिक विज्ञान के विभाग इस दिशा में विशेष ध्यान देकर नयी शक्ति एवं सोच से विद्यार्थियों को यह विश्वास दिलाने की ओर काम करें कि उनकी क्षमताओं के लिए भविष्य नये-नये द्वार खोलने के लिए तत्पर है। उद्योगों में भी उनका उज्ज्वल भविष्य है।

उदाहरण के लिए हम भौतिकी को लेते हैं। कंप्यूटर विज्ञान, इंजीनियरी, गणित, रेडियोलॉजी, जैव भौतिकी, मौसम विज्ञान, पत्रकारिता, शिक्षा विज्ञान, पेटेंट कानून प्रबंधन, चिकित्सा, एस्ट्रोनॉमी, रसायन इत्यादि ऐसा कौन सा क्षेत्र है जिसमें भौतिकी की अपनी महत्ता नहीं है। तो क्यों मौलिक भौतिकी के प्रति रुझान कम होना चाहिए। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि इनमें कैरियर के कई विकल्प जुड़े हैं। आवश्यकता है केवल थोड़ी प्रतीक्षा (सब्र) की। अन्यथा प्रतिभावान विद्यार्थी तेज रफ्तार से बढ़ रहे समाज में बहुत कुछ थोड़े ही समय में पा लेने की लालसा में भटक सकते हैं। यूं तो प्रकृति का नियम अपना रास्ता खुद तय कर देगा फिर भी मूल विज्ञान की संस्थाओं के संबंधित प्रोफेसरों और वैज्ञानिकों की अहम् जिम्मेदारी बनती है कि वे उच्च प्रतिभा के विद्यार्थियों एवं युवा वैज्ञानिकों का सही मार्गदर्शन करें। प्रतिष्ठित प्रोफेसर एवं वैज्ञानिकों को स्कूल-कॉलेज स्तर के छात्रों को मूल विज्ञान के विषयों के लिए सही समझ देने की दिशा में विशेष प्रयत्न करने होंगे। इस संदर्भ में 'वैज्ञानिक' के अक्तूबर-दिसंबर 1999 अंक 31 (4) में छपे डॉ. राजगोपाल चिदंबरम के एक वक्तव्य का उल्लेख असंगत नहीं होगा। उन्होंने कहा था "नयी सदी में भौतिकी एवं विज्ञान की अन्य शाखाओं, विशेषकर जीव विज्ञान में काफी सक्रिय इंटरफेसिंग की संभावना है। अत: आज के वैज्ञानिक परिदृश्य को देखते हुए विलक्षण बुद्धि के छात्र-छात्राओं को भौतिकी जैसे विषयों के उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए आकर्षित करने के लिए एक सही वातावरण बनाने की आवश्यकता है।" इसलिए मूल विज्ञान का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिए योजनाकार निश्चित अच्छे जॉब अवसरों का प्रावधान बनाकर उन्हें मूल शोध करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं न कि सतही तौर पर ज्ञान हासिल कर केवल अच्छे नंबरों में उत्तीर्ण होने के लिए। अभी हाल में डॉ. पीटर एस. फिसके द्वारा प्रकाशित एक 'कैरियर गाइड' के अनुसार आज के विद्यार्थियों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण सुझाव "विकल्पों को बनाना तथा अवसरों को पहचानना" है। आशा है आनेवाले समय में यह सुझाव एवं दृष्टिकोण समाज को, उच्च कोटि के वैज्ञानिकों को देने में कारगर सिद्ध होगा। और वैज्ञानिकों को भी समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान मिल पायेगा।

प्रस्तुत अंक वर्ष 2001 का जनवरी-मार्च व अप्रैल-जून का संयुक्तांक है। इसमें लेख-टिप्पणियों-विज्ञान समाचारों के अतिरिक्त होमी भाभा हिंदी विज्ञान प्रतियोगिता (2000) के परिणाम तथा हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की नयी कार्यकारिणी संबंधी जानकारी भी दी गयी है। साथ ही वैज्ञानिक परिचय, विज्ञान कथा, विज्ञान कविता-पहेलियों को भी स्थान दिया गया है। पाठकों के सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं के लिए हम उनके आभारी हैं तथा 'वैज्ञानिक' के स्तर को बढ़ाने में आगे भी उनके सहयोग की अपेक्षा करते हैं।

— डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

श्वासरोग के विकास में एलर्जी की भूमिका

अखिलेश कुमार तिवारी
द्वारा - राम प्रताप तिवारी
भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान,
नामकुम-रांची - 834 010

संप्रति किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि बाल्यावस्था के आरंभ में ही सामान्यत: वायुजन्य पर्यावरणीय प्रत्यूर्जकों (Allergens) के प्रति संवेदनशीलता का क्रम प्रारंभ होता है। इसके उपरांत स्थायी श्वास रोगों की चरम परिणति और विकास मात्र रोग प्रेरकों के एक उपसमूह पर ही आधारित होता है और कभी-कभी कई वर्षों तक यह प्रकट नहीं होता है। श्वास रोग तथा एटॉपी (Atopy) के मध्य संबंध स्थापित करने वाली कड़ी के रूप में श्वास नलिका की आंतरिक भित्तियों के स्थायी प्रवाह की अहम् भूमिका होती है। इसके परिणामस्वरूप स्थानीय ऊतकों में संरचना तथा कार्यपरक परिवर्तन होने लगते हैं जो इस व्याधि के लक्षणों के लिए उत्तरदायी होते हैं। प्रस्तुत लेख में इस प्रकिया में निहित कोशिका तंत्र एवं आण्विक तंत्र की प्रकृति के बारे में अद्यतन शोध जानकारी का तथ्यपूर्ण विवरण दिया जा रहा है।

श्वास रोग (दमा) के संदर्भ में "प्रत्यूर्जा" (Allergy) एक अति संकटपूर्ण घटक के रूप में मानी जाती है। दमा से आक्रांत रोगियों पर विशिष्ट एलर्जीकारकों को श्वासमार्गों से अंदर प्रविष्ट होने का द्विआयामी प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप विसंगत, तीव्र एवं विलंबित प्रतिक्रियाएं होने लगती हैं तथा श्वासमार्ग का अवरोध शनैः शनैः आरंभ हो जाता है। यह स्थिति लघु अंतराल पर स्वैच्छिक रूप से अथवा समयोचित उपचार के द्वारा उत्क्रमणीय हो जाती है। ऐसी धारणा है कि यह वायुनलिका के प्रदाह का सीधा परिणाम है।

इस प्रक्रिया के कोशिकीय अधिक्रेंद्र में CD^{4+}-T सहायक स्मृति कोशिकाएं होती हैं जो साइटोकाइनों के एक वर्ग का सृजन करती हैं जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ल्यूकोसाइट्स को क्रियान्वित कर देती हैं। ये अंततः श्वासनली के स्थायी प्रत्यूर्जक प्रदाह को उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी होती हैं। इनमें मुख्य रूप से टाइप 2 / सहायक (Th 2) साइटोकाइन (जो इस प्रकिया में संलिप्त होता है), इंटरल्यूकिन-4 (IL-4), IL-3 एवं IL-5 तथा IL-3 (संयुक्त रूप में) होते हैं। IL-4 विशिष्ट एलर्जीकारक इम्यूनोग्लोब्यूलिन - ई (IgE) के सृजन हेतु एक प्रभावी घटक है और IL-3 बेसोफ़िल के विकास और मास्ट कोशिकाओं पर नियंत्रण करने में सक्षम भी होता है। IL-5 और IL-3 संयुक्त रूप में एक अन्य घटक (उत्प्रेरक) GM - CSF (ग्रेन्यूलोसाइट मैक्रोकेज कॉलोनी उत्प्रेरक) की उपस्थिति में एलर्जी के इओसिनोफिल अवयव को नियंत्रित करता है। Th-2 निष्कर्षित IL-9 अवयव की भूमिका तथा IgE के उद्भव के नियंत्रण तथा मास्ट कोशिका वृद्धि के क्षेत्र में अधिकांश शोधकर्ताओं ने अभिरुचि लेना प्रारंभ कर दिया है और इसके परिणाम प्रतीक्षित हैं।

इस प्रक्रिया के अंतिम चरण में प्रत्यूर्जा की तीव्रतम अवस्था का प्रतिनिधित्व पारंपरिक सद्यःजात अति संवेदनशीलता के रूप में होता है। इस अवस्था का आविर्भाव एलर्जीकारक प्रेरित विशिष्ट IgE के मास्ट कोशिका समूह से आबद्ध प्रतिजन (Antigen) के कारण होता है। मास्ट कोशिकाएं छोटे-छोटे कणों से संबद्ध मीडिएटरों का मोचन करती हैं जो तीव्र प्रत्यूर्जक प्रभावों से उत्पन्न तात्कालिक लक्षणों के लिए उत्तरदायी होते हैं।

श्वास व्याधि में इनके कारण श्वास मार्ग का संकुचन आरंभ हो जाता है तथा प्रत्यक्षत: कुछ अन्य प्रतिक्रियात्मक उपव्याधि लक्षणों का प्राकट्य होने लगता है, यथा-शोथ (Oedema) । इसके अतिरिक्त इनके द्वारा विविध रासायनिक कीमोकाइन्स और साइटोकाइन्स का मोचन भी होता रहता है जो द्वितीय चरण के प्रभावी कारकों, विशेषत: इओसिनोफ़िल्स की क्रियाशीलता और संयोजन को प्रश्रय देते रहते हैं । प्रत्यूर्जक प्रतिक्रियाओं की अंतिम अवस्था के प्रतीक चिन्हों के रुप में इनकी भूमिका सर्वमान्य है ।

व्याधि की चरम परिणति की अवस्था में प्रतीकात्मक स्म से श्वास नलिकाओं में परिवहनात्मक शोथ, श्लेष्मावरोध एवं क्रियाशील Th-2 कोशिकाओं की उपस्थिति प्रकट होने लगती है । शनैः शनैः यह अवस्था संवेदनशील स्थलों पर प्रभावी होने लगती है । प्रदाह सर्जक घटकों में इओसिनोफिल्स के अतिरिक्त महत्वपूर्ण प्रभावी संख्या में मोनोसाइट्स, न्यूट्रोफिल्स और प्लेटलेट्स के साथ-साथ टी - कोशिकाओं के विभिन्न समूहों के प्रतिनिधि भी शामिल होते हैं । प्रत्यूर्जात्मक प्रतिक्रिया की चरम अवस्था के संदर्भ में मास्ट कोशिकाओं की सापेक्षिक उपयोगिता एवं योगदान के बारे में अभी तक सर्वसम्मति नहीं हो सकी है, तथापि मास्ट कोशिकाओं पर किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि ये कोशिकाएं ऐरोसोल एलर्जीकारकों से उत्प्रेरित कणों को स्थापित करने में योगदान अवश्य करती हैं । इस दिशा में मास्ट कोशिका प्रेरित अर्बुद नेक्रोसिस संघटक (TFN-α^{10}) की संभावित भूमिका सिद्ध हो चुकी है ।

संप्रति, यह भी संकेत प्राप्त हुए हैं कि संरचनात्मक कोशिकाएं, यथा वायुनलिका की उपस्तरीय कोशिकाएं, श्वासरोगों में माध्यम के महत्वपूर्ण संसाधनों के स्म में कार्य करती हैं । विगत कुछ वर्षों में वायुमंडलीय प्रतिजनों से उत्पन्न होने वाली प्रत्यूर्जा अधिसंख्य देशों में उत्तरोत्तर आम होती जा रही है । अधिकांश आक्रामक प्रत्यूर्जक निरंतर आंतरिक पर्यावरणीय क्षेत्रों में प्राकृतिक स्म में उपस्थित रहते हैं ।

श्वसन विषयक प्रत्यूर्जा की संवेदनकारी प्रवृत्ति :

अधिकांश व्यक्तियों में आम धारणा है कि दमा की प्रारंभिक अवस्था में रोक-थाम संभव है, विशेषत: ऐसे रोगियों में जिनमें वायुजन्य पर्यावरणीय एलर्जीकारकों के प्रति प्रतिरोधी तंत्र का प्रारंभिक संवेदनीकरण अभी प्रारंभ हो रहा होता है । विगत कतिपय वर्षों में प्राथमिक प्रत्यूर्जा संवेदनीकरण की आंतरिक क्रिया विधि संबंधी अवधारणा में परिवर्तन हुआ है । Th-कोशिका विषमता संबंधी अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि मानवीय अंतर्श्वासी एलर्जीकारक Th-स्मरण कोशिकाओं के द्वारा साइटोकाइन्स के उत्पादन में अनेक विभिन्नताएं होती हैं । ऐसे मनुष्यों में साइटोकाइन का प्रतिरूप म्यूरीन Th-2 कोशिकाओं अथवा Th-0 कोशिकाओं के समान होता है जो मिश्रित साइटोकाइन प्रोफाइल प्रदर्शित करती हैं । अन्य मामलों में Th-1 के समान प्रोफाइल पायी जाती है । IgE के उत्पादन और इओसिनोफिलिया के उद्भवकारकों के रूप में क्रमशः साइटोकाइन IL-4 एवं IL-5 उत्तरदायी होते हैं जो एलर्जीकारकों की उपस्थिति में सक्रिय हो जाते हैं । एलर्जी के संक्रमण के संदर्भ में वास्तव में विषम साइटोकाइन उत्पादन प्रतिरूप दीर्घकालीन प्रतिरक्षात्मक आयामों से गहन रूप में संबद्ध रहते हैं ।

ऐसा प्रतीत होता है कि एलर्जीकारक विशिष्ट Th-स्मरण कोशिकाओं के साइटोकाइन लक्षण स्वरूप निर्दिष्ट करने वाले प्रमुख घटनाक्रम जीवन की प्रारंभिक अवस्था में ही घटित होने लगते हैं और कभी-कभी इस प्रकार की व्याधियों के स्थायी लक्षण कई वर्षों पूर्व ही प्रकट होने लगते हैं । Th - कोशिकाओं का पर्यावरणीय प्रारंभिक निवेशन (एलर्जीकारकों के प्रति) आश्चर्यजनक रूप से गर्भाशय के अंदर ही होने लगता है । ऐसा संभवत: एलर्जीकारकों के पराजरायु परिवहन के माध्यम से होता है जिनका सामना माता को गर्भावस्था में करना पड़ता है । ये पूर्ववर्ती एलर्जीकारक Th - कोशिका प्रत्युत्तर Th -2 साइटोकान्स के उत्पादन के कारण विशेष प्रभावी हो जाते हैं । इनका प्रगाढ़ संबंध जीवन के उत्तरार्ध से होता है। ऐसा अनुमान है कि यह प्रक्रिया भ्रूणमातृ का अंतरापृष्ठ पर Th-1 साइटोकान्स, यथा - इन्टरफेरान (IFN-γ) जो

जरायु के लिए अत्यंत विषाक्त होते हैं, के उत्पादन के फलस्वरूप होने वाले चयनित अधोनियमन का सीधा परिणाम है ।

संपूर्ण प्रक्रिया का प्रधान नियंत्रक ट्रोफोब्लास्ट तथा अन्य कोशिकाओं के अंदर जरायु पर प्रभावी अवयवात्मक उत्पादन होता है जिनमें विशेषत: प्रोस्टाग्लैन्डिन E_2, प्रोजेस्टेरोन, IL-4 और IL-10, जो Th-2 पोषी अथवा Th-1 निरोधी होते हैं, सम्मिलित होते हैं । जन्मोत्तर ये Th-2 नियंत्रक प्रणालियां प्रभावहीन होने लगती हैं और भ्रूणीय Th / कोशिकातंत्र सहसा अत्यधिक मात्रा में पर्यावरणीय प्रतिजनों के प्रति अनावरित हो जाता है । परिणामस्वरूप भ्रूणीय प्रत्यूर्जात्मक Th - कोशिका प्रत्युत्तर एलर्जीकारक के प्रभावी चक्र के प्रति समर्पित हो जाता है । इससे यह स्पष्ट हो चुका है कि शैशवावस्था तथा प्रारंभिक बाल्यावस्था में आहार संबंधी प्रत्यूर्जकों (यथा - अंडे का एल्बूमेन) के प्रति उद्‌माषन (Exposure) के मामलों में Th - कोशिका प्रत्युत्तर T-कोशिकाओं की प्रतिरक्षात्मक क्षमता के आधार पर नकारात्मक नियमन उत्पन्न कर देते हैं ।

उपर्युक्त निरूपण के विपरीत श्वास संबंधी व्याधियों के एलर्जीकारकों के जन्मोत्तर उद्‌माषन, जो अति न्यून सांद्रण में होते हैं, का परिणाम या तो इन प्रत्युत्तरों का पुनर्निर्देशन होता है जिसे प्रतिरक्षात्मक विचलन कहा जाता है या फिर भ्रूणीय Th - 2 ध्रुवीकृत प्रतिरक्षा की वृद्धि होता है । इस प्रकार की विचलन क्रिया की असफलता की बढ़ती हुई प्रवृत्ति जीवन की प्रारंभिक अवधि में रोग प्रसार को उत्तरोत्तर प्रोत्साहन देती है । यह घटना विकसित देशों में जन्म-समूहों में अधिक दृष्टिगोचर होती है । इस असफलता का कारण अभी अस्पष्ट है परंतु इस दिशा में कुछ संकेत अवश्य प्राप्त हुए हैं । यह भी स्पष्ट हो चुका है कि जन्मोत्तर Th- कोशिका कार्य का संक्रमण (जो Th-2 विषमावस्थात्मक भ्रूणीय जीवन से प्रकट होता है) बच्चों में मंदगति से होता है ।

ऐसी अवधारणा है कि Th-1 सदृश प्रतिरक्षा के विकास हेतु बाल्यावस्था में इस प्रक्रिया को स्पष्टत: समझने में निश्चय ही सफलता प्राप्त हो सकेगी । अन्यान्य प्रमाणों से ऐसे संकेत प्राप्त हुए हैं कि सामान्य जन्मोत्तर Th-1 सदृश प्रतिरक्षा के लिए प्रधान उत्तेजक सूक्ष्मजीवी अनावरण होता है । इस तरह का उद्‌माषन आंशिक रूप से शैशवावस्था के संक्रमणों एवं विकासोन्मुखी प्रक्रिया के मध्य संबंधों की विषमता को स्पष्ट करता है। इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य बात यह है कि अद्यतन परिभाषित जीन-प्रकूटन की बहुरूपता तथा प्रत्यूर्जाकारी संवेदना की तीव्रता के बीच गहन संबंध होता है । जीन-प्रकूटन की बहुरूपता CD-14 शाकाण्वीय लाइपो- पॉली सैकेराइड की उच्च सजातीयता के ग्राही प्रकूटन से संबंधित होती है । यह प्रकूटन CD-14 जीन (गुणसूत्र संख्या 5) की लंबी भुजा पर अवस्थित होता है । यह IL-4 एवं IL-9 जीन गुच्छ का समीपवर्ती होता है । यह घुलनशील CD-14 के स्तर को नियंत्रित भी करता है तथा Th-1 पोषी IL-12 के उत्पादन का केंद्रीय स्तर पर नियमन भी करता है ।

चिकित्सकीय श्वासरोग में अति प्रत्युत्तरता :

दमा शब्द से चिकित्सकीय लक्षण प्रारूपों (Clinical Phenotypes) के विषमांगी समूह का बोध होता है । इस व्याधि की बालकों और वयस्कों में अभिव्यक्ति तुलनात्मक स्तर पर सर्वथा भिन्न होती है । कम आयु के बच्चों में दमा की उपस्थिति वास्तव में सर्वाधिक होती है परंतु इनमें से 50% तक किशोरावस्था प्राप्त करते-करते श्वसन में होने वाली कठिनाइयों से मुक्ति पा जाते हैं । दमा की उत्तेजना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक विषाणु संक्रमण होता है जो लगभग 85% बालकों में पाया जाता है । वयस्कों में यह संक्रमण केवल एक अंश तक ही इसके लिए उत्तरदायी होता है । यहां पर यह उल्लेखनीय है कि बच्चों में दमा के लक्षण आरंभिक अवस्था में ही प्रकट होने लगते हैं और बाह्य रूप से दृष्टव्य भी होते हैं । इस प्रकार के बच्चे किशोरावस्था में ही इन लक्षणों का वहन करते हैं ।

स्थायी दमा का एक सर्वोपरि लक्षण श्वास नलिकाओं में अति प्रत्युत्तरता का उत्तरोत्तर विकास (AHR) भी होता है । ऐटोपिक श्वासरोग के संदर्भ में

अतिवर्धिता श्वास नलिका अवरोध प्रत्युत्तर ही एक प्रधान लक्षण होता है जो न केवल एलर्जीकारकों के प्रति संवेदना से संबंधित होता है, अपितु कई अविशिष्ट उद्दीपकों (यथा शीतल वायु या उद्दीपक रसायन अथवा मेथाकोलीन) के द्वारा उत्पन्न उद्दीपन । अति प्रत्युत्तरता की इस स्थिति के सृजन की प्रक्रिया अभी पूर्ण रूपेण ज्ञात नहीं हो सकी है । ऐसी धारणा है कि दमा के विशिष्ट रोगियों में कई कारणों से AHR का उद्भव हो सकता है जिसके फलस्वरूप स्थायी एलर्जीकारक शोथ (Inflammation) उत्पन्न हो सकता है जो कालांतर में श्वास नलिका के पुनर्प्रतिरूपण को जन्म देता है क्योंकि निम्न बाह्यस्तरीय कोलाजेन निक्षेपण बढ़ जाता है । ऐसी परिस्थिति में नलिकाओं की मोटाई बढ़ जाती है । इसके अतिरिक्त वायु-नलिका की चिकनी मांस पेशियों में (ASM) वर्धीकृत संवहनीयता, अतिवृद्धि स्पष्टतः दृष्टिगोचर होने लगती है ।

कुछ अन्य शोधकर्ताओं के अनुसार कलश कोशिकाओं (Goblet Cells) की वर्धित संख्या में उपस्थिति तथा स्वायत्तशासी चेता से इनके संबंधों का एकांतरण भी उपर्युक्त परिस्थिति के प्रति भूमिका अदा करता है । यह एकांतरण मुख्य रूप से नॉन-कोलीएनर्जिक और नॉन-एड्रीनेर्लीन वर्धी निरोधक एवं अन्य उत्तेजनकारी अवयवों के कारण होता है । शोथ प्रेरित वायु नलिकाओं का पुनर्प्रतिरूपण AHR के विकास में बाधक हो सकता है जिसके अन्य कई कारक भी होते हैं - यथा-ASM के चेता नियमन का एकांतरण, ASM की संकुचनशीलता में वृद्धि अथवा ASM के ग्राहियों की कोलीनर्जिक उद्दीपनों के प्रति संवेदनशीलता का एकांतरण आदि । इसके अतिरिक्त वायु नलिकाओं में प्रतिरूपण भी अति प्रत्युत्तरता को प्रश्रय देता है जो मांसपेशी के अंदर के ऊतक के आयतन में श्लैष्मा वर्धन और शोथ के परिणाम स्वरूप होता है । शोथग्रस्त कोशिकाओं का अंतर्प्रवाह जो अधोश्लेष्मा स्तर के नीचे होता है अथवा उपकला का वर्धित संवहन, दोनों ही वायुमार्ग की संकीर्णता में होने वाली अभिवृद्धि के सर्जक माने जाते हैं । ASM की ह्रासीय लघुता (Reduction) भी सीमित अवरोध उत्पन्न करता है जो प्रायः ASM में होने वाली अतिवृद्धि के कारण से कालांतर में उत्पन्न होती है । वायुमार्गों में इसके परिणामस्वरूप संकीर्णता बढ़ते-बढ़ते श्वास नलिकाओं में अवरोध होने लगता है जो दमा का एक प्रधान लक्षण है ।

श्वास नलिका संबंधी जटिलताओं के कुछ अन्य कारण भी होते हैं जिनमें फेफड़ों के मृदुतकों (Parenchyma) की अंतर्लिप्तता रहती है । यहां पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि फेफड़ों के मृदुऊतकों के वायु मार्गों के साथ संयोजन के परिणामस्वरूप जब फेफड़ों में प्रसार होता है तो इस अंतःनिर्भरता के कारण वायुनलिकाओं में खिंचाव उत्पन्न हो जाता है । पार-श्वसन नलिका जीवूतकीय परीक्षण (Transbronchial Biopsy) के माध्यम से किये गये सूक्ष्म अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि वयस्क दमा रोगियों की कूपिका भित्तियों (Alveolar Walls) में इओसिनोफिलिक शोथ होता है । अभी हाल में अत्याधुनिक यंत्रों की सहायता से किये गये अध्ययनों, (जिनमें कैथेटर शीर्ष दाब मापी(Cathater Tipped Manometers) को मानवीय सूक्ष्म वायुमार्गों में प्रविष्ट करते हैं) से यह ज्ञात हुआ है कि मेथाकोलीन के अंतर्श्वसन द्वारा प्रवेश के परिणामस्वरूप मृदुऊतकीय प्रत्युत्तर प्रकट होते हैं । कभी-कभी कूपिका दाब को सीधे ही नाप कर भी इस निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है ।

इस दिशा में फेफड़ों की मृदूतकीय क्रियाशीलता का मनुष्यों के ऊपर पड़ने वाले प्रभावों का सविस्तार अध्ययन चल रहा है तथा इस कारण फेफड़ों में होने वाले मृदूतकीय शोथ एवं दमा व्याधि के संक्रमण के संदर्भ में वायुमार्गों की क्रियाशीलता में प्रेरित समस्त परिवर्तनों के बारे में नवीनतम सूचनाएं प्राप्त होने की पूर्ण आशा है ।

यद्यपि साधारणतया यही समझा जाता है कि दमा में होने वाला वायुमार्ग का पुनर्प्रतिरूपण श्लेष्मा में विभिन्न वर्धी और निरोधकारी घटकों के बीच असंतुलन का ही परिणाम है, फिर भी संक्रमणकाल में उत्पन्न शोथ के बारे में कोशिकीय एवं आण्विक स्तरों पर

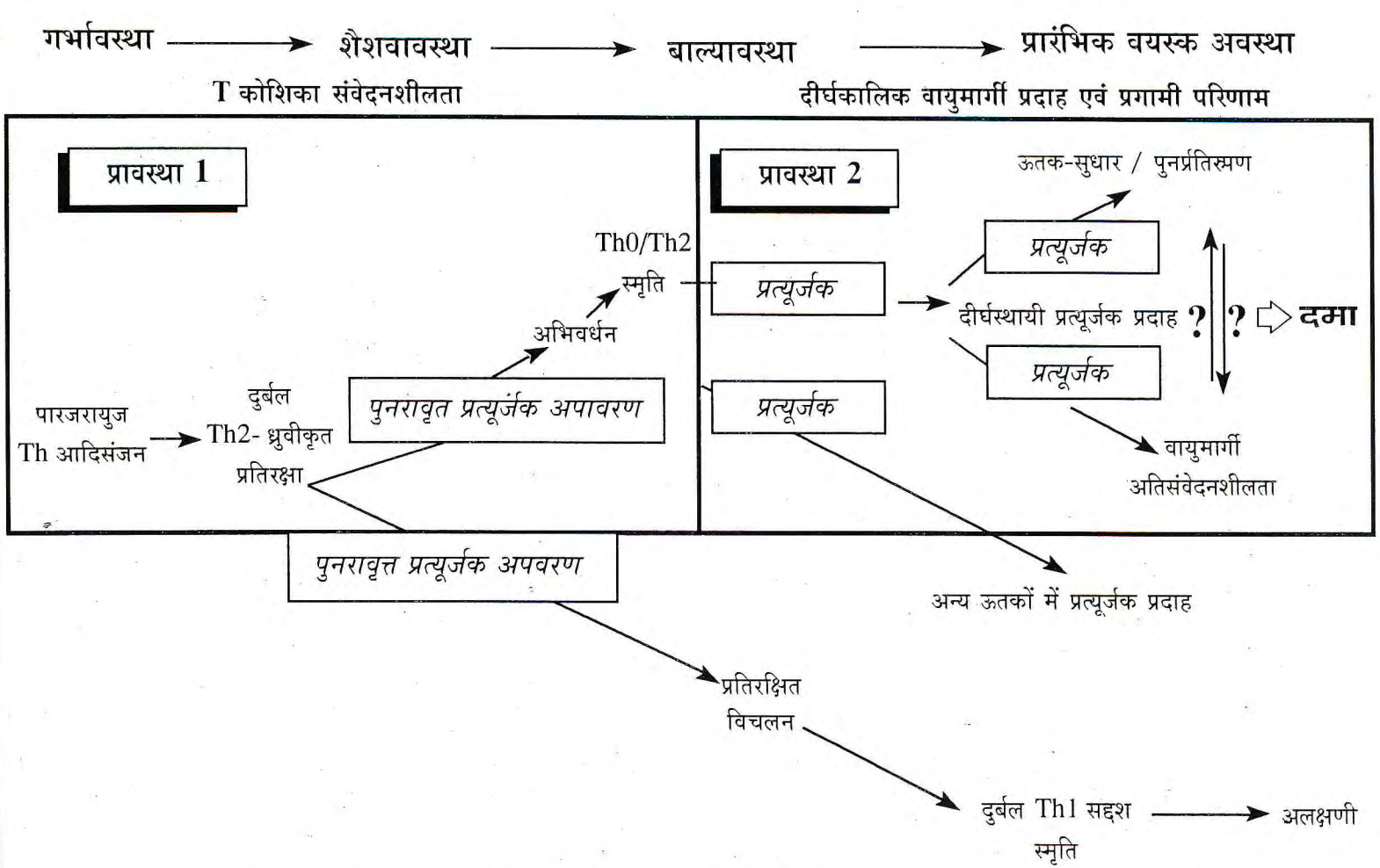

चित्र - 2 : पूर्वबाल्यावस्था में प्रारंभिक प्रत्यूर्जक संवेदनशीलता की प्रगति की प्रावस्थाएं

कारकों के बारे में हमारा ज्ञान अभी अपूर्ण ही है, उदाहरणार्थ - प्रयोगशाला में किये गये ASM के निष्क्रिय संवेदन के फलस्वरूप मांसपेशियों में संकुचनशीलता आ जाती है जिसकी पृष्ठभूमि में छिपे मूलभूत कारण अभी अज्ञात हैं, यद्यपि यह स्पष्ट किया जा चुका है कि यह प्रक्रिया IgE प्रतिकारकों की उच्चस्तरीय उपस्थिति पर निर्भर करती है । अंतरकोशिकीय कोलाजेन के निक्षेपण के संबंधों में (जो वायु नलिकाओं की उपकलात्मक आधारभूत झिल्ली के नीचे होता है) एक महत्वपूर्ण प्रमाण यह प्राप्त हुआ है कि उपर्युक्त प्रक्रिया में मांसपेशीय तंतुओं का महान योगदान होता है । इसके अतिरिक्त प्रयोगात्मक स्तर पर संपन्न अध्ययनों से विभिन्न वर्धी घटकों की संवेदी भूमिका के बारे में ज्ञात हुआ है जो क्षतिग्रस्त वायुमार्ग की उपकलात्मक कोशिकाओं से विमोचित होते हैं । इनमें PDGF (प्लैटलेट्स व्युत्पन्न वर्धी घटक), IGF-1 (इंसुलिन-सदृश वर्धी घटक, bFGF (आधारभूत तंतुकारक वर्धी घटक) एवं TGF β (रूपांतरकारी वर्धी घटक) भी सम्मिलित होते हैं ।

जीवित प्राणियों पर किये गये अध्ययनों से बाह्य प्रत्युत्तर (जो AHR के सृजन हेतु उत्तरदायी होते हैं) के सूक्ष्म पक्षों की जानकारी ज्ञात करने में आशातीत सफलता प्राप्त होने की संभावना व्यक्त की जा रही है । पुनश्च, इस प्रसंग में प्राणि प्रतिरूपों के माध्यम से कुछ प्रथम दृष्टया तथ्य प्राप्त भी किये जा चुके हैं । मुख्यतः चूहों और चुहियों दोनों के प्रयोगात्मक प्रतिरूप विकसित किये जा चुके हैं जो यह प्रदर्शित करते हैं कि $CD\text{-}4^+$ T-कोशिकाएं AHR को संप्रेरित करने में सक्षम होती हैं और इन्हें संवेदीकृत प्राणियों से सामान्य प्राणियों स्थानांतरित किया जा सकता है । IL-5 के उत्पादन एवं इओसिनोफिल्स से इनका अंतरंग संबंध भी होता है । ट्रांसजीनिक चुहियों के प्रतिरूप जिनमें विशिष्ट साइटोकाइनों की अतिव्यक्तता (जो वायुमार्गों के मृदूतकों को भी संप्रभावित करती है) भी इस क्रिया में अंतर्दृश्य उपलब्ध करते हैं ।

इस प्रकार वायुनलिकाओं की भित्तियों में बाह्य कोशिकीय मैट्रिक्स के शोथ प्रेरित निक्षेपण की प्रक्रिया को समझने में भी सहायता मिली है । ग्राही अवरोध तकनीक का उपयोग इस दिशा में लाभप्रद सिद्ध हुआ है जिसका एक मुख्य उदाहरण IL-13 का AHR के विकास में महत्व प्रदर्शित करने वाले चूहों पर किये गये अध्ययन हैं ।

एलर्जी एवं चिकित्सकीय दमा का विकास :

प्रत्यूर्जक व्याधि के रोगसर्जक पक्षों में एक ऐसा भी है जिसके बारे में अत्यल्प जानकारी ही ज्ञात हो सकी है, वह है - लक्ष्य-अंग चयनशीलता । एक ही एलर्जीकारक के प्रति होने वाली अतिसंवेदनात्मकीय प्रतिक्रिया के समान स्तरों की विभिन्न व्यक्तियों में पृथक्-पृथक् रूप में अभिव्यक्ति होती है, उदाहरणार्थ त्वचा संबंधी व्याधि (Dermatitis), वृक्कशोथ, नासिकाशोथ (Rhinitis) और बहुप्रत्यंगी व्याधियां । दमा के संदर्भ में स्थिति विशेष रूप से जटिल होती है । यद्यपि अधिकतर दमा ग्रस्त रोगी एक या एक से अधिक प्रत्युर्जकों के प्रति संवेदी होते हैं तथापि इनमें से कुछ ही में अंततोगत्वा स्थायी वायु-नलिका संबंधी व्याधियां उत्पन्न हो पाती हैं। आस्ट्रेलिया में हुए एक शोध-अध्ययन के अनुसार प्रारंभिक विद्यालयों के छात्रों में 40% तक एक या एक से अधिक प्रश्वासी एलर्जीकारकों के प्रति संवेदनशीलता पायी गयी है । युवावस्था में भी कमोबेश यही स्थिति बनी रहती है यद्यपि तथ्य रूप में 90% से अधिक दमा रोगियों में संवेदनशीलता अवश्य उपस्थित रहती है । मात्र 25 से 30% रोगियों में ही दीर्घकालिक संवेदनशीलता की चरम परिणति दमा में होती है ।

इस तथ्य के आधार पर यह परिकल्पना की जाती है कि वायु नलिकाओं में श्लेष्मिक संकेंद्रन कुछ अतिरिक्त सह-घटकों के कारण होता है । जैसा कि चित्र-1 में प्रदर्शित है, दमा के विकास की प्रक्रिया दो चरणों में होती है । प्रथम चरण में प्रश्वास के दौरान अंतर्ग्रहीत विशिष्ट एलर्जीकारकों के संदर्भ में उत्पन्न प्रतिरक्षात्मक संवेदना का विकास होता है । यह प्रक्रिया सामान्यतया शैशवावस्था की अवधि में होती है । कुछ प्राणियों में इसके फलस्वरूप Th-0 अथवा Th-2 ध्रुवीकृत

प्रतिरक्षात्मक स्मृति और एलर्जीकारक संवेदनीयता का विकास भी होता है और श्वसन संबंधी प्रत्यूर्जक व्याधियों के सृजन की संभावनाओं में वृद्धि होती है परंतु यह स्वयं व्याधि की अभिव्यक्ति के लिए यथेष्ट नहीं है। अभिव्यक्ति मात्र उन प्राणियों में ही होती है जिनमें वायुजन्य प्रतिजनों के द्वारा प्रत्यूर्जक संवेदनशीलता के सृजन का परिणाम वायुनलिका की श्लेष्मा का स्थायी प्रदाह या शोथ होता है।

ऐटॉपिक दमा का एक विशिष्ट लक्षण ऊतक-विकृति संबंधी भी होता है। इसके अंतर्दृश्य में वायुनलिकाओं की श्लेष्मा में क्रियाशील Th- कोशिकाओं की उपस्थिति होती है जो Th-2 साइटोकाइन्स का उत्पादन करती हैं। एलर्जीकारकों से परिचालित इन कोशिकाओं की क्रियाशीलता के पुनरावृत्तिक चक्रों का दुष्परिणाम अंततोगत्वा ऊतकों में स्थायी घाव निर्माण प्रक्रिया को जन्म देता है। ऐसा विश्वास है कि दमा की पूर्ण संक्रमित अवस्था में उत्पन्न होने वाले वायु नलिकाओं के संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक परिवर्तनों का मुख्य कारण उपर्युक्त पुनरावृत्तीय चक्र होते हैं। शोध परिणामों से ऐसे संकेत प्राप्त हुए हैं कि वायुनलिकाओं की भित्तियों में दीर्घकालीन विकृतिकारी परिवर्तनों के अवक्षेपित होने के लिए Th-2 माध्यम प्रवर्तित शोथकारी क्षति का स्तर एक निश्चित क्रांतिक प्रभाव सीमा से अधिक होना आवश्यक होता है।

दमा के संक्रमण का द्वितीय चरण उपरोक्त घटनाक्रम के उपरांत प्रारंभ होता है। इस स्थिति में दमा से अनुबद्ध अतिवादी सह-घटकों में वे कारक भी समावेशित होते हैं जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से स्थानीय वायुमार्ग के शोथ स्तर में वृद्धि संप्रेरित करते हैं। इन कारकों में कुछ प्रमुख कारकों का वर्णन नीचे किया गया है।

वायुजन्य बहिर्जात शोथ उद्दीपक कारक :

अद्यतन उपलब्ध प्रमाणों से यह संकेत प्राप्त हुए हैं कि वायु जन्य उद्दीपकों में मात्रात्मक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण श्वसनसंबंधी विषाणु संक्रमण ही होते हैं। प्रश्वासी एलर्जीकारकों के आंतरिक स्तरों का महत्व दूसरे महत्वपूर्ण उद्दीपकों के रूप में होता है। ये दोनों प्रधान उद्दीपक बालकों और वयस्कों में दमा के निरंतर वृद्धिकारी घटकों के रूप में भूमिका अदा करते हैं। इनके अतिरिक्त संभावित व्याधि उद्दीपकों में उल्लेखनीय हैं - पर्यावरणीय कारक (धूलकण, तंबाकू का धुआं, डीजल निर्वातक अवयव)। माता के द्वारा धूम्रपान गर्भावस्था एवं प्रसवोत्तर दोनों ही स्थितियों में शैशवास्था में फेफड़ों की क्रियाशीलता में होनेवाले ह्रास के साथ संबद्ध होता है तथा यह दमा के विकास के संदर्भ में एक अतिशय स्वतंत्र आपदाकारी घटक के रूप में माना जाता है।

वायुमार्गों की श्लेष्मा में प्रतिरक्षात्मक नियमन तंत्र की असफलता :

T - कोशिकाओं के माध्यम से वायु नलिकाओं की श्लेष्मा में होने वाले प्रतिरक्षात्मक शोथ संबंधी प्रत्युत्तरों की अवधि एवं तीव्रता को सीमित करने की दिशा में उपरिशायी नियंत्रक नियामकों की श्रृंखला सामूहिक रूप से कार्यशील होती है। NO (नाइट्रिक ऑक्साइड) का स्थानीय उत्पादन भी इसमें सम्मिलित होता है। यह घटक T - कोशिका काइनेजों को प्रभावित कर उनकी क्रियाशीलता को संयमित करता है। यद्यपि नाइट्रिक ऑक्साइड के T- कोशिकीय संदमनकारी प्रभाव Th-1 कोशिकाओं के विरुद्ध Th-2 कोशिका समूह पर अधिक प्रभावी होते हैं। इसीलिए यह मध्यस्थता करनेवाला यौगिक Th-2 साइटोकाइन लक्षण प्रारूपों की ओर अग्रगामी T-कोशिका प्रत्युत्तरों को दिशाहीन करने में सफल होता है। यहां पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि दमाग्रस्त वायुमार्गों की आंतरिक सतहों पर NO का उत्पादन उच्चस्तरीय होता है।

द्रुमिका कोशिकाएं (Dendritic Cells) ही वायुनलिकाओं की दीवालों में मुख्यत: प्रतिजन प्रस्तुतकारी भूमिका अदा करती हैं परंतु इनके क्रियात्मक लक्षण प्रारूप (Functional Phenotypes) सामान्यतया दृढ़ता से नियंत्रित और प्रतिजन अंतर्ग्रहण के एक संसाधन तक ही सीमित होते हैं। कोशिकाओं का GM - CSF में रात्रिपर्यंत अनावरण आवश्यक होता है ताकि प्रतिजन प्रस्तुतीकरण क्रिया की परिपक्वता संप्रेरित की जा सके। यद्यपि यह साइटोकाइन सामान्यतया केवल अत्यल्प मात्रा में विश्रमित

वायु नलिका ऊतकों में ही उत्पादित होता है तथापि दमा ग्रस्त रोगियों में स्थानीय स्त्र से उच्चस्तरीय मात्रा में उपस्थित रहता है। नवीनतम प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि दमा रोगियों की वायुनलिकाओं की आंतरिक उपकला में साइटोकाइन उत्पादन में होने वाले ये परिवर्तन अंतर उपकलात्मक द्रुमिका कोशिकाओं की स्थानीय सघनता में होने वाली वृद्धि के साथ संबद्ध होते हैं तथा क्रियाशीलता उत्पन्न करने वाले करकों की धरातलीय अभिव्यक्ति के सहगामी उपरिनियमन से भी संबद्ध होते हैं। दमा के प्राणिज स्वरूपों में $CD\text{-}4^{+}$ Th -कोशिका संप्रेरित प्रयोगात्मक वायुमार्ग संबंधित इयोसिनीयता में द्रुमिका कोशिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

वायुनलिका भित्तियों के अंदर एक अतिरिक्त नियमन तंत्र (जो प्राय: दमा के रोगियों में विक्षुब्ध रहता है) में स्थानीय बृहद्भक्षिकाओं (Macrophages) की संलिप्तता होती है। यह तंत्र सामान्य स्थिति में T - कोशिकाओं के प्रत्युत्तरों को T - कोशिकीय चक्रीयन के द्वारा सीधे प्रभावित करते हुए उन्हें अधो नियमित करता है। इसके अतिरिक्त APC के निरोधक प्रभावों से यह तंत्र नियमित होता है। दमा में वायुमार्गों के प्रदाह-स्थलों के अंदर कार्यरत मोनोसाइट्स के द्वारा एकांतरित T - कोशिकापोषी लक्षण प्रति स्त्रों के प्रदर्शन के बारे में भी पर्याप्त प्रमाण पाप्त हुये हैं।

Th - 2 प्रत्युत्तरों की विविधता :

जब एलर्जीसर्जक Th-2 सदृश प्रत्युत्तरों की तुलना रोगियों के संदर्भ में की जाती है तो आशातित मात्रात्मक एवं गुणात्मक विविधता प्रत्यक्ष स्त्र से प्रदर्शित होती है। इन विविधताओं में से कुछ चरमस्तरीय प्रत्युत्तरों एवं अग्रगामी एलर्जीकारकों से संप्रेरित प्रतिरक्षात्मक प्रदाह संबंधी क्षति के सृजन में भी योगदान करती हैं। इनमें एलर्जेन विशिष्ट T-कोशिका क्लोन के आकार, पार-नियमनकारी साइटोकाइनों के मध्य संतुलन तथा प्रतिशोथसर्जक IL-10 अवयव सम्मिलित होते हैं। गत कुछ समय में संपन्न गवेषणात्मक कार्यों के निष्कर्ष से यह ज्ञात हुआ है कि शिशुओं में प्रश्वासी एलर्जीकरकों की प्रतिक्रियाओं का परिणाम, T - केशिकाओं की IL- 10 अवयव उत्पादक क्षमता के मध्य विलोम संबंध होता है।

विविधता का एक अतिरिक्त स्रोत श्लेष्मिक आवासीय अणुओं में अवस्थित एलर्जीसर्जक Th-2 कोशिकाओं के बाह्य धरातलीय अभिव्यक्ति स्तरों में होने वाली अप्रासंगिकता हो सकती है। ऐसे आवासीय अणुओं में α-4, β-7 भी हो सकते हैं। कुछ अन्य स्रोतों के रूप में T-कोशिकाओं के विशिष्ट ऊतकों में आवागमन को प्रभावित करने वाले कुछ कारक भी होते हैं, यथा त्वचा की लिम्फोसाइट्स से संबंध प्रतिजन।

रचनात्मक कोशिकाओं का कार्यारंभ :

रचनात्मक कोशिकाओं के द्वारा वायु-नलिका भित्तियों में होने वाले प्रदाहकारी उद्दीपन की अनुपस्थिति में प्रदाही साइटोकाइन्स का निर्माण स्तर अपेक्षाकृत निम्न होता है। यद्यपि दमा रोगियों में वायु नलिका की उपकलात्मक कोशिकाएं, तंतुसर्जक (Fibroblasts) अंत:स्तरीय कोशिकाएं और सुकोमल मांसपेशीय कोशिकाओं के साइटोकाइनों और मध्यस्थों का विस्तृत सीमा तक उत्पादन करती हैं जो संभवत: ऊतक प्रत्युत्तर और दीर्घकालीन प्रदाह संबंधी प्रत्युत्तर का ही एक अंश होता है। ये लाक्षणिक प्रतिस्त्री परिवर्तन जो वायुमार्गीय श्लेष्मा में होते हैं, आंशिक रूप में वायुमार्गी प्रदाह के लिए भी उत्तरदायी होते हैं और दीर्घकालिक व्याधि से ग्रस्त रोगियों में स्थायी स्त्र से विद्यमान होते हैं।

निष्कर्ष एवं अनुमान :

अभी हाल के कुछ वर्षों में अधिकांश मामलों में ऐसे कोशिकीय और आण्विक प्रभावी तंत्रों की पहचान करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है जिसका योगदान संवेदी स्थलों पर तीव्र और समयोत्तर अवस्था के प्रत्यूर्जक प्रदाह उत्पन्न करने में होता है। इस महत्वपूर्ण सूचना के द्वारा अचूक लक्षी प्रतिप्रदाही औषधियों के विकास की दिशा में भी लाभ हुआ है। इस मार्ग में सर्वोपरि बाधक प्रक्रियात्मक अतिरिक्तता होती है। यद्यपि प्रभावी तंत्रों का पदानुक्रम शनै: शनै: स्पष्ट हो रहा है। विशेष उल्लेख के अंतर्गत ऐसे दीर्घकालिक प्रत्यूर्जक प्रदाह के

विषय में स्थिति स्पष्ट हो चुकी है कि CD^{+}_{4} Th - कोशिका माध्यमित इओसिनोफिल का अंश दान ही इसका उत्तरदायी होता है ।

इस तथ्य की प्रमाणिकता के कई साक्ष्य शोधकार्यों के माध्यम से उत्तरोत्तर प्राप्त हो रहे हैं कि श्वास रोगी के आंतरिक ऊतकों में उग्रतर प्रत्युर्जक व्याधि की प्रगति एक पुनरावर्ती प्रक्रिया होती है जिसमें मूल प्रतिरक्षात्मक प्रदाही प्रत्युत्तर को प्रेरित करता है । इस प्रकार के प्रत्युत्तर वास्तव में बहिर्जात उद्दीप्त प्रतिरक्षात्मक प्रदाही प्रतिक्रियाओं द्वारा उत्तेजित प्रत्युत्तर होते हैं जो आहत ऊतकों के द्वारा उत्पन्न होते हैं । व्याधिग्रस्त वायुमार्ग की भित्तियां इस प्रक्रिया का ज्वलंत उदाहरण हैं । इस प्रकार की व्याधिग्रस्त नलिकाएं जो तीव्र स्तरीय प्रत्यूर्जात्मक प्रदाह को समेटे रहती हैं और उसे उद्दीपन भी प्रदान करती हैं, दृढ़तापूर्वक प्रकर्षित होती रहती हैं । इसके समवर्ती पश्चस्थिति विषयक प्रतिक्रिया भी वर्धित होती रहती है । T-कोशिकाओं के प्रत्युत्तरीय अवयवों का उत्तरोत्तर प्रसरण होता जाता है ।

वायुनलिका के ऊतकों में इस प्रकार की प्रतिक्रिया के अंतर्गत अनुकूलित परिवर्तनों की एक श्रृखंला भी संयुक्त रहती है जो अंततोगत्वा ऊतकों में रचनात्मक परिवर्तन ला सकती है और कालांतर में फेफड़ों के कार्य संपादन पर स्थायी प्रभाव पड़ने की संभावना रहा करती है । यद्यपि अभी तक यह स्पष्ट नहीं हो सका है कि इनमें से किस दीर्घकालीन परिवर्तन के फलस्वरूप वायु नलिका भित्ति के अंतःस्तरीय ऊतकों में दमा के विशिष्ट लक्षण प्रकट होते हैं । प्रतीकात्मक दृष्टि से दमा के विकास की दिशा कुछ योगदान एकांतरित प्रतिरक्षात्मक प्रदाही क्रिया-पथों का भी होता है । इसके सर्वोत्तम उदाहरण वंशजन्य दमा तथा व्यावसायिक श्वासरोग हैं जो टॉल्वीन डाइ ऑक्साइड आइसोसायनेट्स के कारण होते हैं । इनमें IgE की कोई भूमिका नहीं होती है फिर भी इनमें कोशिकीय अंतर्स्यनंदन एवं संबद्ध साइटोकाइन उत्पादन का अंशदान होता है जो वायुमार्ग की भित्तियों में निष्प्रादित होता है ।

ऐसा ज्ञात हुआ है कि दमा के समस्त प्रतिरूपों में वायुमार्ग के उपकलात्मक विचलन की उपस्थिति अवश्य होती है । शोधकर्ता वैज्ञानिकों की धारणा है कि मानव विकास की उस अवस्था में जब फेफड़ों का विकास चरम सीमा पर होता है, दमा संबंधी प्रत्यूर्जक प्रदाह अथवा वायुमार्गीय परिवर्तनों का उद्दीपन जन्म ले लेता है । इस महत्वपूर्ण तथ्य की परिकल्पना से यह आशा बलवती हुई है कि इस जटिल व्याधि की उद्भव प्रक्रिया में अंतर्क्रियाशील अवयवों की पहचान सरल अवश्य हो जायेगी । इन अवयवों का अध्ययन, भूमिका के बारे में सूचना संग्रहण भी सरल हो जायेगा जो इस कष्टदायी व्याधि के तीव्र से दीर्घकालिक असाध्य रूप के उत्कर्ष के प्रति उत्तरदायी होते हैं ।

❑❑❑

भूकंपों का वैज्ञानिक पहलू

योगेंद्र सिंह भदौरिया, फाल्गुनी रॉय एवं जी. जयचंद्रन नायर
भूकंप विज्ञान प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

हाल ही में गुजरात में आये भूकंप ने प्रकृति की विभीषिका के समक्ष, मानव की असहायता का प्रमाण दिया है। यद्यपि भूकंप का पूर्वानुमान लगाना असंभव है, तथापि इसके फलस्वरूप जान-माल के नुकसान को वैज्ञानिक विधियां अपनाकर कम किया जा सकता है। ये भूकंप क्यों आते हैं ? क्या भविष्य में भूकंपों की भविष्यवाणी संभव हो सकेगी ? क्या भूकंप को रोका जा सकता है या इनसे बचने के लिए क्या-क्या करना चाहिए ? इत्यादि प्रश्न सामने आते हैं। प्रस्तुत लेख में इन्हीं प्रश्नों एवं भूकंप से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है

आदिकाल से ही भूकंप मानव जाति के लिए सर्वाधिक विनाशकारी प्राकृतिक आपदाओं में से एक बने हुए हैं। इसका कारण यह है कि भूकंप बिना किसी पूर्वाभास के कभी भी कहीं भी आ जाते हैं और कुछ ही पलों में विनाश का तांडव करके चले जाते हैं। एक अनुमान के अनुसार (देशपांडे, 1987) ऐतिहासिक काल से लेकर अब तक लगभग 50 लाख लोग भूकंपों के कारण मारे जा चुके हैं जिनमें सर्वाधिक 20 लाख लोग चीन में, 5 लाख जापान में तथा साढ़े तीन लाख से ज्यादा (गुजरात भूकंप को छोड़कर) लोग भारत में काल-कवलित हो चुके हैं। एक साथ सर्वाधिक 8 लाख तीस हजार लोग चीन के शेन्सी प्रांत में 1556 में आये भूकंप में मारे गये थे। चीन में ही 28 जुलाई 1976 को तांगशेन के भूकंप में लगभग साढ़े छह लाख लोग मारे गये थे। साइंस काउंसिल ऑफ जापान की 1989 की रिपोर्ट के अनुसार बीसवीं सदी में (1988 तक) पृथ्वी पर घटित हुई सभी प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, तूफान, ज्वालामुखी, भूकंप, अकाल आदि द्वारा किये गये कुल नुकसान का आधे से अधिक (50.9 %) भाग भूकंपों के कारण हुआ है।

औसतन, पूरे विश्व में प्रतिदिन 30 से 40 महसूस करने योग्य (परिमाण 4.5 से अधिक) भूकंप कहीं न कहीं अवश्य आते हैं। इनके अलावा प्रतिवर्ष लगभग 800 शक्तिशाली (परिमाण 5.0 से 5.9 तक), 18 बड़े (परिमाण 7.0 से 7.9 तक) तथा कम से कम एक विध्वंसक (परिमाण 8.0 या अधिक) भूकंप भी विश्व में कहीं न कहीं अवश्य आता है। सौभाग्य से ज्यादातर भूकंप या तो समुद्र में या कम आबादी वाले क्षेत्रों में आते हैं जिस कारण नुकसान कम हो पाता है। साल में कोई एक आध भूकंप ही घनी आबादी वाले क्षेत्र में आकर विनाश-लीला कर पाता है जिसका परिणाम होता है हजारों की मौत तथा करोड़ों का नुकसान।

26 जनवरी 2001 को भारतीय समय के अनुसार 8 बजकर 46 मिनिट 41 सेकंड पर गुजरात के भुज जिले में 23.4^0 अक्षांश उ. तथा 70.32^0 देशांतर पू. पर सतह से लगभग 24 किमी. गहराई में 6.9 परिमाण (भा. मौसम विज्ञान विभाग के अनुसार) का एक बड़ा भूकंप आया जिसने पूरे देश को हिला कर रख दिया। हजारों लोग मारे गये तथा करोड़ों की संपत्ति का विनाश हुआ। भूकंप इतना शक्तिशाली था कि इसके झटके न केवल भारत में बल्कि पाकिस्तान, नेपाल, बंगलादेश तथा म्याँमार तक में महसूस किये गये। 15 अगस्त 1950 को 8.6 परिणाम के उत्तरी असम में आये भूकंप के बाद, जिसमें लगभग 12 हजार लोग मर गये थे, यह भारतीय भूभाग का सबसे विनाशकारी भूकंप था। भुज क्षेत्र में 16 जून 1819 को आये 8.1 परिमाण के भूकंप के बाद यह

उस क्षेत्र में दूसरा बड़ा भूकंप था। पहले वाले भूकंप के परिणाम स्वरूप लगभग 1500 लोग मरे थे (क्योंकि उन दिनों भुज क्षेत्र की आबादी बहुत कम थी) तथा सिंदरी के पाँच मील उत्तर में सुप्रसिद्ध 'अल्लाह बंध' नामक रेत की 25 किमी. लंबी तथा 3 मीटर उँची भ्रंश-कगार का निर्माण हो गया था जो आज भी दिखाई पड़ती है।

गुजरात जैसे किसी बड़े भूकंप के बाद जहाँ एक ओर भूकंप वैज्ञानिक उसके विश्लेषण में जुट जाते हैं वहीं दूसरी ओर सामान्य जन-मानस में अनेकों प्रश्न उत्पन्न होते हैं जो कुछ इस प्रकार के होते हैं :- (1) भूकंप क्यों आते हैं ? (2) रिक्टर पैमाना क्या होता है ? तथा इस पर भूकंप का मापन कैसे किया जाता है ? (3) एक संस्थान द्वारा बताया गया भूकंप का परिमाण दूसरे संस्थान द्वारा बताये गये परिमाण से कम या ज्यादा क्यों होता है ? (4) क्या भूकंपों की भविष्यवाणी की जा सकती है यदि नहीं तो क्यों ? (5) क्या भूकंपों को रोका जा सकता है ? (6) भारत के किन-किन क्षेत्रों में भूकंप आ सकते हैं ? (7) कैसे बचा सकते हैं इमारतों को गिरने से ? तथा (8) क्या करना चाहिए भूकंप के आ जाने पर ? इसके अलावा कुछ भ्रांतिजनित प्रश्न भी उत्पन्न होते हैं जैसे :- (1) गुजरात भूकंप का मुंबई में रिक्टर स्केल पर क्या परिमाण था ? (2) क्या गुजरात का भूकंप मुंबई या बैंगलूर में भूकंप प्रेरित कर सकता है ? तथा (3) क्या भूमिगत परमाणु विस्फोट या किसी अन्य तरीके से मनुष्य द्वारा किसी स्थान पर भूकंप पैदा किया जा सकता है ?

इस तरह के प्रश्नों के उत्तर पाने तथा भूकंपों के विषय में उत्पन्न कौतूहल और भ्रांतियों को शांत करने के लिए भूकंप विज्ञान के आधारभूत सिद्धांतों, भूकंप मापन प्रणालियों एवं पृथ्वी की आंतरिक संरचना की प्राथमिक जानकारी अत्यंत आवश्यक है।

क्यों और कैसे आते हैं भूकंप ?

वैसे तो भूकंप अपनी विध्वंसक क्षमता के कारण आदिकाल से ही मनुष्यों के लिए लोक कथाओं और किंवदंतियों का स्रोत बने रहे हैं परंतु आज के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनके आने का सही कारण 1965 में प्लेट-विवर्तनिकी सिद्धांत के प्रतिपादन के बाद ही ज्ञात हो सका। कनाडा के भू-वैज्ञानिक जॉन टूजो विल्सन द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धांत 1915 में जर्मन वैज्ञानिक एल्फ्रेड लोथर वेग्नर द्वारा प्रतिपादित महाद्वीपीय संवहन (Continental drift) की अभिधारणा पर आधारित है। इस अभिधारणा के अनुसार लगभग साढ़े बाईस करोड़ साल पहले आज के सारे महाद्वीप एक दूसरे से जुड़े हुए थे और इस इकलौते विशाल भू-भाग को पेनेजिया (Panagea) कहा जाता था। पृथ्वी का शेष भाग महासागर में डूबा हुआ था। लगभग 20 करोड़ साल पहले यह विशाल भूभाग दो टुकड़ों में विभाजित हुआ जिन्हें लॉरेशिया और गोंडवाना लैंड कहा गया। लॉरेशिया में आज के उत्तरी अमरीका तथा यूरेशिया महाद्वीप शामिल थे जबकि गोंडवाना लैंड में आज के भारत, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका तथा दक्षिणी अमरीका महाद्वीप शामिल थे। बाद में ये दोनों विशाल भूखंड भी अनेकों छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित हो गये और विभिन्न दिशाओं में बहते हुए आज की स्थिति में आ गये। टुकड़ों के बीच खाली स्थानों में समुद्र बनता गया।

प्लेट-विवर्तनिकी सिद्धांत के अनुसार पृथ्वी की ऊपरी परत लगभग 100 किमी. मोटाई की करीब एक दर्जन प्लेटों में बंटी हुई है। कठोर और भंगुर चट्टानों की बनी ये प्लेटें अंदर के आंशिक रूप से तरल और समांगी मेन्टिल के ऊपर तैरती सी प्रतीत होती हैं। विभिन्न दिशाओं में 2 से 10 सेमी. प्रति वर्ष की गति से तैरती ये प्लेटें या तो अभिसरित होकर एक दूसरे से टकराती हैं या अपसरित होकर एक दूसरे से दूर होती जाती हैं। जिन क्षेत्रों में प्लेट सीमाएं एक दूसरे से दूर हटती जाती हैं उन्हें रिज़ तथा जहां पास आती जाती हैं उन्हें ट्रेन्च या खाई कहते हैं। रिज़ क्षेत्रों में प्लेटों के बीच की खाली जगह पृथ्वी के अंदर से निकलने वाले मेन्टिल पदार्थ से भरती जाती है जबकि खाई क्षेत्रों में सामान्यतः एक प्लेट दूसरी प्लेट के नीचे घुसकर अपनी क्रस्ट को ऊपर वाली प्लेट के मेन्टिल में विलीन कर देती है। इस प्रक्रिया को महाद्वीपीय सब्डक्शन तथा ऐसे सीमा क्षेत्रों को सब्डक्शन जोन

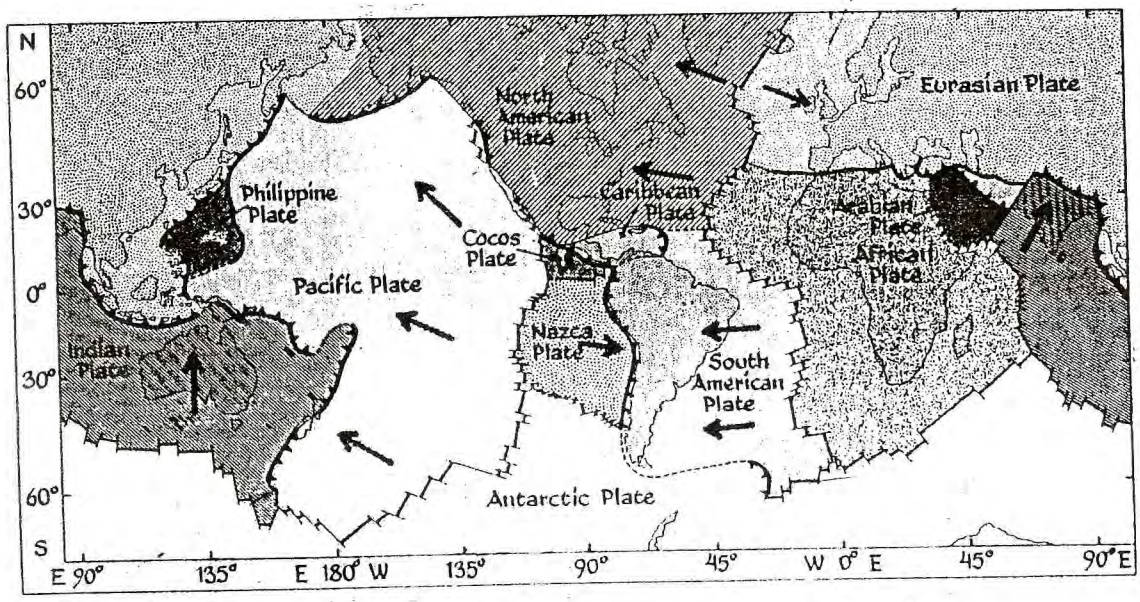

चित्र - 1 : प्रमुख विवर्तनिक प्लेटें तथा उनकी सापेक्षिक गति

कहा जाता है। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि दो प्लेटें टकराने के बाद एक दूसरे के नीचे घुसने कि बजाय क्षैतिज दिशा में खिसक जायें। ऐसे संधि क्षेत्रों को रूपांतरित फॉल्ट कहते हैं। आम तौर पर प्लेटों की सीमाएं जहाँ मिलती या अलग होती हैं वहां पर्वत-श्रेणियाँ तथा ज्वालामुखी जैसी भू-संरचनाएं देखने को मिलती हैं। चित्र-1 में विभिन्न प्लेटों को दर्शाया गया है ।

ज्यादातर बड़े भूकंप प्लेटों के मिलान क्षेत्रों में ही आते हैं क्योंकि इन क्षेत्रों में प्लेटों के टकराव के कारण दोनों भूखंडों में बहुत अधिक प्रतिबल उत्पन्न होते हैं जो विकृति-ऊर्जा के रूप में दोनों प्लेटों में लगातार एकत्र होते रहते हैं। जब यह ऊर्जा चट्टानों की सहनशक्ति से ज्यादा हो जाती है तो वे टूट जाती हैं और भूकंप आ जाता है। इस प्रक्रिया में दोनों भूखंडों की क्रस्ट कई अन्य जगहों पर भी टूट जाती हैं जिन्हें हम फॉल्ट या भ्रंश कहते हैं। बाद में ये भ्रंश स्वयं भी चट्टानों के छोटे-छोटे टुकड़ों के लिए प्लेटों के संधि स्थल की तरह बर्ताव करने लगते हैं अर्थात यहां भी दो प्लेटों की तरह चट्टानों के छोटे टुकड़ों में विकृति-ऊर्जा एकत्र होने लगती है और इन क्षेत्रों में भी भूकंप आने लगते हैं यद्यपि वे प्लेट सीमाओं पर आये भूकंप की तुलना में छोटे होते हैं। अतः जब प्लेटों में एकत्रित विकृति-ऊर्जा संधि क्षेत्रों के अलावा प्लेट के अंदरूनी भाग में किसी कमजोर स्थान पर भी उत्सर्जित हो जाती है तो वहां एक नया फॉल्ट बन जाता है जो भविष्य में किसी भूकंप का जनक हो सकता है।

फॉल्ट मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं : (1) स्ट्राइक-स्लिप फॉल्ट (2) डिप-स्लिप फॉल्ट तथा (3) तिर्यक फॉल्ट। जिन फॉल्टों के दोनों तरफ की चट्टानों की गति क्षैतिज दिशा में होती है उन्हें स्ट्राइक-स्लिप तथा जिनमें यह गति उर्ध्वाधर दिशा में होती है उन्हें डिप-स्लिप फॉल्ट कहते हैं। इन दोनों गतियों के मिश्रण को दर्शाने वाले फॉल्ट को तिर्यक फॉल्ट कहते हैं। आमतौर पर सभी फॉल्ट तिर्यक होते हैं। एक चट्टान के दूसरी के सापेक्ष दायें या बायें खिसकने के अनुसार स्ट्राइक-स्लिप फॉल्ट दक्षिण-पार्श्वीय या वाम-पार्श्वीय स्ट्राइक-स्लिप फॉल्ट हो सकता है (देखें चित्र-2)। इसी प्रकार डिप-स्लिप

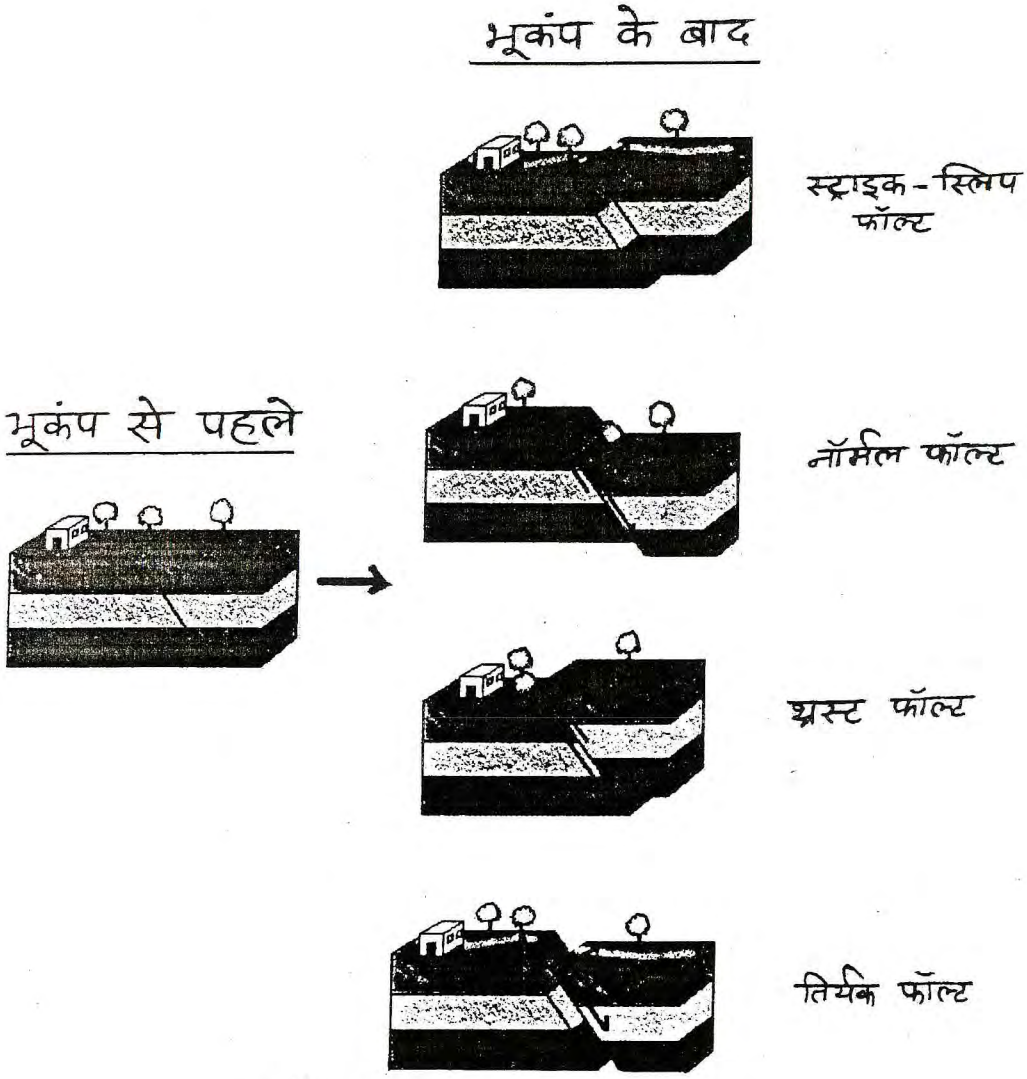

चित्र - 2 : प्रमुख विभिन्न प्रकार के फॉल्ट

फॉल्ट भी चट्टानों के नीचे या ऊपर की तरफ खिसकने के अनुसार क्रमशः सामान्य (Normal) या विपरीत (Thrust) डिप-स्लिप फॉल्ट हो सकते हैं। नॉर्मल फॉल्ट चट्टानों के बीच खिंचाव तथा थ्रस्ट फॉल्ट दबाव प्रदर्शित करता है।

भूकंपों का मापन :

भूकंप मापन का इतिहास बहुत पुराना है। 132 में चीन के दार्शनिक चेंग हेंग ने भूकंप दर्शी नामक एक यंत्र बनाया जिससे भूकंप आने की दिशा का बोध हो सकता था। बाद में हॉट फ्यूली द्वारा 1703 में एक अन्य भूकंपदर्शी बनाने का उल्लेख मिलता है जो भूकंप की दिशा के साथ-साथ उसकी शक्ति भी दर्शा सकता था। ये दोनों ही भूकंपदर्शी कोई यांत्रिक उपकरण न होकर भूकंप का बोध कराने वाले साधन मात्र थे।

संवेदनशील भूकंप मापी उपकरणों के विकास में उल्लेखनीय प्रगति उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में तब हुई जब जॉनमिल्ने, जेम्स इविंग तथा थॉमस ग्रे ने 1892 में संवेदनशील भूकंपमापी उपकरण बनाया तथा

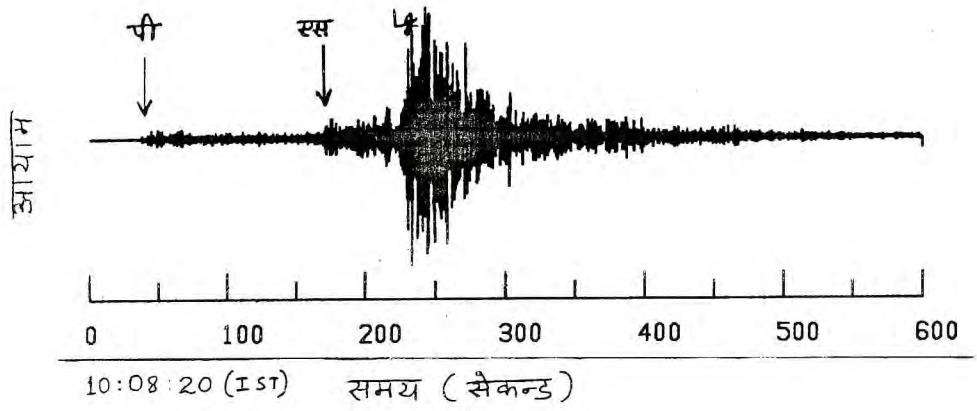

चित्र - 3 : गौरीबिदनूर स्टेशन द्वारा 26 जनवरी 2001 को भारतीय समय के अनुसार 10 बजकर 8 मिनट, 20 सेकंड पर रिकॉर्ड किये गये भुज (गुजरात) भूकंप के एक आफ्टर शॉक का भूकंपलेख । यू. एस. जी. एस. के अनुसार इसका परिमाण 4.7 था ।

विश्व में कई स्थानों पर इसकी स्थापना करायी । भारत में मिल्ने का भूकंपलेखी उपकरण सर्वप्रथम 1 दिसंबर 1898 को अलीपुर कलकत्ता में स्थापित किया गया और इसी के साथ भूकंप विज्ञान भूकंपों के तुलनात्मक अध्ययन से हट कर गणनात्मक अध्ययन की ओर अग्रसर होने लगा ।

आधुनिक भूकंपमापी उपकरण मुख्यत: फैराडे के विद्युत चुंबकीय प्रेरण के सिद्धांत पर आधारित होते हैं । इनमें एक शक्तिशाली चुंबक को पेंडुलम की तरह स्प्रिंग द्वारा उपकरण के फ्रेम से लटकाया जाता है तथा एक सुचालक तार की कुडंली को फ्रेम में इस तरह लगाते हैं कि वह हमेशा चुंबक के चुंबकीय क्षेत्र में रहे । पृथ्वी में जरा भी हलचल होने पर भूकंपमापी का फ्रेम हिलने लगता है तथा चुंबक और कुंडली के बीच सापेक्ष गति के परिमाण के समानुपाती कुंडली में विद्युत वाहक बल उत्पन्न हो जाता है । इस विद्युतीय विभव को आवर्धन के पश्चात चुंबकीय टेप, कागज के चार्ट अथवा कंप्यूटर की डिस्क में रिकॉर्ड कर लिया जाता है । इस तरह के रिकॉर्ड को सिस्मोग्राम तथा सारी उपकरण प्रणाली को सिस्मोग्राफ या भूकंपलेखी कहते हैं । भुज में आये भूकंप के एक आफ्टरशॉक का गौरीबिदनूर में रिकॉर्ड किया गया सेस्मोग्राम चित्र-3 में प्रदर्शित किया गया है ।

भूकंप के प्राचल तथा उनका निर्धारण :

पृथ्वी के अंदर जिस बिंदु पर भूकंप आता है उसे अधिकेंद्र या फोकस कहते हैं (देखें चित्र-4) । अधिकेंद्र के ठीक ऊपर पृथ्वी की सतह पर स्थित बिंदु को भूकंप का उत्केंद्र या एपीसेंटर कहा जाता है । उत्केंद्र की भौगोलिक स्थिति को अक्षांश और देशांतर कोणों द्वारा निरूपित किया जाता है जो इसके निर्देशांक कहलाते हैं । उत्केंद्र तथा भूकंपीय वेधशाला के बीच की कोणीय दूरी को उत्केंद्र दूरी कहते हैं तथा इसे Δ से निरूपित करते हैं और डिग्री में नापते हैं (1 डिग्री $\simeq$ 111.2 किमी.) । किसी भी वेधशाला पर भूकंप का अभिलेख कैसा प्राप्त होगा यह उस वेधशाला की उत्केंद्र से दूरी पर निर्भर करता है । जिन भूकंपों का उत्केंद्र वेधशाला से 500 किमी. तक दूर स्थित होता है उन्हें स्थानीय भूकंप, 500 से 2000 किमी. तक दूरी वालों को क्षेत्रीय भूकंप तथा 2000 किमी. से अधिक दूरी वालों को टेलीसेस्मिक भूकंप कहते हैं । आमतौर पर स्थानीय तथा क्षेत्रीय भूकंपों

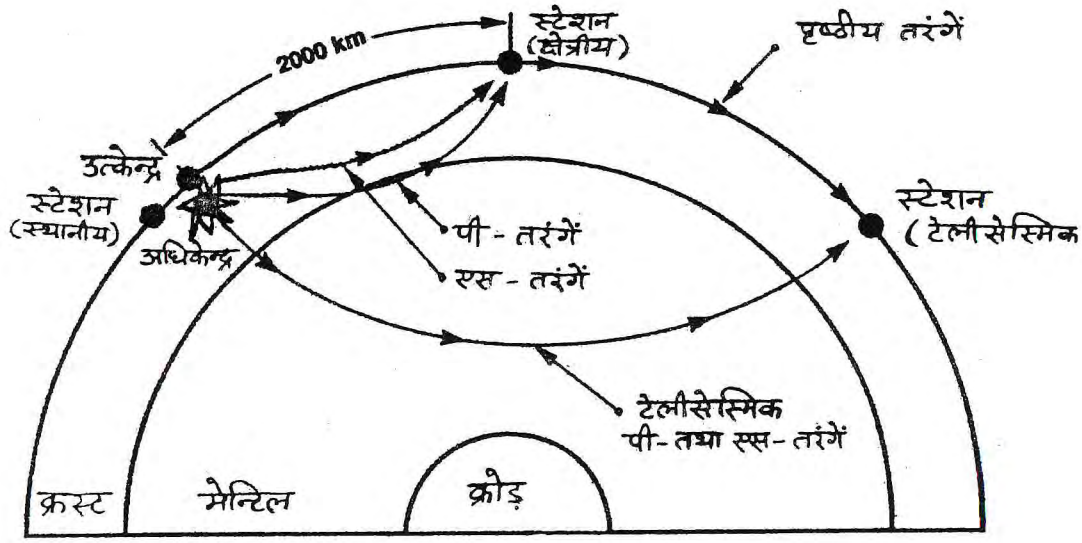

चित्र - 4 : पृथ्वी में भूकंपीय तरंगों का संचरण

के अभिलेख अत्यंत जटिल तथा टेलीसेस्मिक भूकंपों के अभिलेख काफी सरल होते हैं ।

जब भी भूकंप आता है तो उसके अधिकेंद्र क्षेत्र में बहुत अधिक विकृति-ऊर्जा उत्सर्जित होती है । भूकंप द्वारा उत्सर्जित ऊर्जा की मात्रा का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि यदि भूकंप से निकली ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदलना संभव होता तो क्लार्क (1984) के अनुसार 6.8 परिमाण के एक मध्यम श्रेणी के भूकंप द्वारा उत्सर्जित ऊर्जा, एक लाख की आबादी वाले किसी शहर को एक साल तक लगातार विद्युत ऊर्जा प्रदान कर सकती थी । इसी प्रकार 8.75 परिमाण के एक भूकंप से निकली ऊर्जा उसी शहर की ऊर्जा आवश्यकताओं को 600 साल तक पूरा करने की क्षमता रखती है ।

भूकंप द्वारा उत्सर्जित ऊर्जा का ज्यादातर भाग उत्केंद्र क्षेत्र में चट्टानों को तोड़ने पिघलाने और वाष्पीकरण में नष्ट हो जाता है । केवल कुछ भाग ही (<1%) भूकंपीय तरंगों के रूप में पूरी पृथ्वी में फैल जाता है जिसे विश्व भर के भूकंप लेखी उपकरण सिस्मोग्राम के रूप में रिकॉर्ड कर लेते हैं । भूकंपीय तरंगें दो प्रकार की होती हैं ; (1) पिंड तरंगें जो पृथ्वी के भू-पिंड से होकर गुजरती हैं तथा (2) पृष्ठीय तरंगें जो भू-पृष्ठ पर चलती हैं ।

पिंड तरंगें दो प्रकार की होती हैं (i) प्राइमरी या पी-तरंगें तथा (ii) शियर या एस-तरंगें । पी-तरंगें ध्वनि तरंगों की तरह अनुदैर्ध्य तरंगें होती हैं अर्थात इनमें माध्यम के कण तरंग संचरण की दिशा में कंपन करते हैं जबकि एस-तरंगें अनुप्रस्थ तरंगें होती हैं क्योंकि इनमें माध्यम के कण तरंग दिशा के लंबवत् कंपन करते हैं । पी-तरंगें सबसे तेज 6 से 14 किमी. प्रति सेकंड की गति से चलती हैं और किसी भी वेधशाला पर सबसे पहले आती हैं जबकि एस-तरंगों की गति पी-तरंग की गति का 0.7 गुना होती है इसलिए ये हमेशा पी-तरंग के बाद ही आ पाती हैं ।

पिंड तरंगों की भाँति पृष्ठीय तरंगें भी दो प्रकार की होती हैं ; रैले तरंगें (LR) तथा लव तरंगें (LQ) । रैले-तरंगों में माध्यम के कण तरंग संचरण की दिशा के सापेक्ष पश्चगामी दीर्घवृत्तीय गति से कंपन करते हैं जबकि लव तरंगों में ये क्षैतिज पटल पर लंबवत दिशा में कपंन करते हैं ।

पिंड तरंगें मुख्यतः उत्केंद्र के आसपास स्थित एक-दो मंजिली निचली इमारतों को ही उच्च आवृत्ति (1हर्ट्ज से अधिक) से ऊपर नीचे तथा क्षैतिज दिशाओं में हिलाने में ज्यादा सक्षम होती हैं क्योंकि इन इमारतों की प्राकृतिक आवृत्ति 1 हर्ट्ज से अधिक होती है । इसके विपरीत पृष्ठीय तरंगें कम आवृत्ति की होने के कारण दूर तक मुख्यतः बहुमंजिली इमारतों को क्षैतिज दिशा में हिलाती हैं । जब कोई इमारत इन क्षैतिज कंपनों को सहन नहीं कर पाती है तो भरभरा कर गिर पड़ती है ।

सिस्मोग्राम पर इन तरंगों के आगमन समय, आयाम और आवर्तकाल को पढ़ कर वैज्ञानिक भूकंप के अधिकेंद्र, उत्पत्ति समय तथा परिमाण की गणना करते हैं । पी-तथा एस-तरंगों के आगमन समय के अंतर द्वारा वेधशाला से उत्केंद्र की दूरी का बोध होता है जबकि भूकंपीय तरंगों के आयाम और आवर्तकाल से भूंकप के परिमाण की गणना की जाती है ।

भूकंप का परिमाण तथा तीव्रता :

भूकंप का परिमाण या मैग्नीट्यूड भूकंप द्वारा स्रोत पर उत्सर्जित ऊर्जा का मापक होता है जिसे सामान्तः रिक्टर पैमाने पर नापा जाता है । रिक्टर पैमाना, प्लास्टिक या धातु का बना कोई सामान्य पैमाना न होकर, दरअसल, एक गणितीय सूत्र है जिसे कैलीफोर्निया के वैज्ञानिक चार्ल्स एफ. रिक्टर ने 1935 में एक विशेष प्रकार के सेस्मोग्राफ द्वारा रिकॉर्ड किये गये कैलीफोर्निया के आस पास आये भूकंपों के परिमाण की गणना करने के लिए विकसित किया था । बाद में गुटेन बर्ग और रिक्टर ने 1954 में इस सूत्र में सुधार करके एक ऐसा पैमाना दिया जिससे किसी भी प्रकार के सिस्मोग्राफ (वुड-एंडरसन सिस्मोग्राफ) द्वारा रिकॉर्ड किये गये विश्व के किसी भी स्थान पर आये भूकंप के परिमाण की गणना की जा सकती थी । इसे बॉडी वेव मैग्नीट्यूड स्केल कहते हैं जो इस प्रकार है :-

$$m_b = \text{Log}_{10}\left(\frac{A}{T}\right) + Q\,(\Delta,h)$$

इसमें m_b इस पैमाने पर भूकंप का परिमाण, A किसी स्टेशन द्वारा रिकॉर्ड किया गया पी-तरंग का आयाम (नैनोमीटर में) तथा T / तरंग का आवर्तकाल है । Q (Δ,h) गुटेनबर्ग-रिक्टर स्थिरांक है जिसका मान उत्केंद्र दूरी Δ तथा भूकंप की नाभीय गहराई h (किमी.) के साथ बदलता जाता है । वास्तव में यह स्थिरांक दूरी तथा गहराई बढ़ने के कारण पी-तरंग के आयाम के अवमंदन की क्षति-पूर्ति करता है । अतः किसी भूकंप का परिमाण विश्व के सभी स्थानों पर लगभग एक समान मापा जाता है । यह पूछना बिल्कुल गलत है कि गुजरात भूकंप का मुंबई में क्या परिमाण था ।

क्योंकि मैग्नीट्यूड पैमाना एक Log पैमाना है इसलिए इस पर एक अंक की बढ़ोत्तरी 10 गुना ज्यादा शक्तिशाली भूकंप निरूपित करती है तथा इससे 32 गुनी ज्यादा उत्सर्जित ऊर्जा निरूपित होती है । अतः 7.0 मैग्नीट्यूड का भूकंप, 6.0 मैग्नीट्यूड के भूकंप से 32 गुनी, 5.0 मैग्नीट्यूड से $32\times32 = 1024$ गुनी, 4.0 मैग्नीट्यूड से $32\times32\times32 = 32,768$ गुनी तथा 3.0 मैग्नीट्यूड से लगभग 10 लाख (10,48,576) गुनी ज्यादा ऊर्जा उत्सर्जित करेगा । इसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि 7.0 परिमाण का एक भूकंप, 4.0 परिमाण के लगभग 32,000 तथा तीन परिमाण के 10 लाख भूकंपों के बराबर होगा । भूकंप से उत्सर्जित ऊर्जा ही मुख्यतः नुकसान का कारण होती है ।

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि विशेषतः स्थानीय तथा क्षेत्रीय भूकंपों (उत्केंद्र दूरी < 2000 किमी.) के विभिन्न वेधशालाओं द्वारा मापे गये मैग्नीट्यूड में ±1 अंक तक का अंतर हो सकता है । इसका कारण यह है कि कम उत्केंद्र दूरी से पी-तरंगें मुख्यतः असमांगी क्रस्ट से होकर गुजरती हैं जिस कारण इनका आयाम किसी स्टेशन विशेष पर कम या ज्यादा रिकॉर्ड किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त भूकंपीय स्रोत पर उत्सर्जित होने वाली पी-तरंगों की ऊर्जा का रेडिऐशन पैटर्न चूँकि फॉल्ट पटल के सापेक्ष चतुर्थांशीय सममिति (Quadrental Symmetry) वाला होता है इस कारण कुछ स्टेशनों की दिशा में ज्यादा तथा कुछ की दिशा में कम

ऊर्जा वाली पी-तरंगें पहुंचती हैं जिससे विभिन्न स्टेशनों द्वारा आंके गये मैग्नीट्यूड का मान अलग-अलग हो सकता है। इसलिए सामान्यतः किसी भूकंप का मैग्नीट्यूड किसी एक स्टेशन द्वारा आंका गया मान न होकर अधिकेंद्र के चारों ओर स्थित अनेकों स्टेशनों द्वारा आंके गये परिमाणों के मानों का औसत निकालकर निर्धारित किया जाता है।

रिक्टर स्केल के अलावा मैग्नीट्यूड मापने के कई पैमाने भी हैं, जैसे बॉडी वेव मैग्नीट्यूड स्केल (m_b), सर्फेस वेव मैग्नीट्यूड स्केल (M_s), लॉग वेव मैग्नीट्यूड स्केल (m_bLg), तथा मोमेंट मैग्नीट्यूड स्केल (Mw)। आजकल मोमेंट मैग्नीट्यूड स्केल को भूकंप की शक्ति मापने का सबसे सही पैमाना माना जाता है। किसी एक पैमाने पर मापा गया भूकंप का मैग्नीट्यूड दूसरे पैमाने पर मापे गये मैग्नीट्यूड से काफी अलग होता है अतः आपस में इनकी तुलना नहीं करनी चाहिए उदाहरण के लिए यूनाइटेड स्टेट्स सर्वे (USGS) द्वारा गुजरात भूकंप के विभिन्न पैमाने पर मापे गये मैग्नीट्यूड इस प्रकार हैं :- मैग्नीट्यूड स्केल $m_b = 7.1$, $Ms = 8.0$, $Mw = 7.7$। आमतौर पर लोग किसी एक पैमाने पर मापे गये मैग्नीट्यूड की तुलना दूसरे संस्थान द्वारा किसी अन्य पैमाने पर मापे गये मैग्नीट्यूड से करने लगते हैं जिस कारण भ्रम की स्थिति बन जाती है।

मैग्नीट्यूड के अतिरिक्त भूकंप की शक्ति बताने वाला एक और पैमाना होता है जिसे तीव्रता या इन्टेन्सिटी पैमाना कहते हैं। मुख्यतः भूकंप के कारण हुए जान-माल के नुकसान तथा अन्य प्रभावों (जैसे कितनी दूरी तक लोगों ने भूकंप महसूस किया) के व्यक्तिगत अवलोकन तथा आंकलन पर आधारित इस पैमाने का प्रतिपादन 1931 में मरकेली नामक वैज्ञानिक ने किया था जिसका परिष्कृत रूप आज भी प्रयोग किया जाता है। इसे मॉडीफाईड मरकेली स्केल या MM स्केल कहते हैं। इस पैमाने पर भूकंप से उत्पन्न विभिन्न प्रभावों को एक से लेकर 12 तक के रोमन अंकों में वर्गीकृत किया गया है। इस पर तीव्रता I का मतलब अत्यंत सूक्ष्म तथा XII का मतलब विध्वंसक भूकंप होता है।

मरकेली पैमाने पर तीव्रता का आंकलन करने के लिए भू-वैज्ञानिकों को भूकंप प्रभावित क्षेत्र में जाकर सर्वेक्षण करके जानमाल के नुकसान तथा अन्य प्रभावों का अध्ययन करना पड़ता है। सर्वेक्षणों से प्राप्त आंकड़ों को MM-स्केल पर वर्गीकृत करके उस क्षेत्र के भौगोलिक मानचित्र पर अंकित किया जाता है। समान तीव्रता वाले स्थानों को सरल रेखाओं द्वारा मिलाने से बने वक्रों को समकंपीय मानचित्र कहा जाता है जिनका भूकंप अभियांत्रिकी में बहुत उपयोग होता है। स्पष्टतः उत्केंद्र क्षेत्र में तीव्रता सर्वाधिक होती है जो दूरी बढ़ने के साथ तेजी से घटती जाती है। क्योंकि तीव्रता का मापन व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित होता है अतः इसमें त्रुटि की संभावना अधिक रहती है।

यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि भूकंप के परिमाण और तीव्रता में कोई सीधा संबंध नहीं है। भूकंप की तीव्रता क्षति का परिचायक है जबकि परिमाण या मैग्नीट्यूड उत्सर्जित ऊर्जा का। भूकंप द्वारा की गयी क्षति उसके मैग्नीट्यूड के अतिरिक्त उत्केंद्र की भौगोलिक स्थिति, उस क्षेत्र की आबादी, वहां की जमीन के गुणों (रेतीली जमीन में पथरीली जमीन की अपेक्षा ज्यादा क्षति होती है), इमारतों की मजबूती तथा भूकंप की नाभीय गहराई पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए गुजरात का 6.9 परिमाण का भूकंप यदि वर्तमान 24 किमी. की बजाय 100 किमी. की गहराई में हुआ होता तो उससे इतना नुकसान नहीं हुआ होता क्योंकि भूकंप से उत्पन्न होने वाली घातक पृष्ठीय तरंगों का आयाम गहराई बढ़ने पर कम हो जाता है।

भारत की भूकंपनीयता :

भारत में हिमालय का सीमांत क्षेत्र विश्व में भूकंपीय दृष्टि से सर्वाधिक क्रियाशील अंतः महाद्वीपीय क्षेत्रों में प्रमुख है जहाँ 1897 से 1950 की अल्पावधि में अब तक के सबसे बड़े 8.0 मैग्नीट्यूड से भी ज्यादा के 4 भूकंप आ चुके हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार लगभग 15 करोड़ साल पहले भारतीय भूभाग अपने पड़ोसियों अफ्रीका, मेडागास्कर, आस्ट्रेलिया एवं अन्टार्कटिका से अलग होकर

तालिका - 1
कुछ प्रमुख भारतीय भूकंप

क्र. सं.	दिनांक	परिमाण	क्षेत्र	नुकसान
1	16 जून 1819	8.1 +	कच्छ (गुजरात)	1500 से ज्यादा मृत, अल्लाह बंध फॉल्ट बना
2	12 जून 1897	8.7 +	असम	1500 से ज्यादा मृत,
3	04 अप्रैल 1905	8.0	कॉगंड़ा (हिमाचल)	20,000 मृत, बहुत ज्यादा नुकसान
4	15 जनवरी 1934	8.3	बिहार-नेपाल सीमा	14,000 मृत
5	15 अगस्त 1950	8.6	असम	15,000 मृत
6	10 दिसंबर 1967	6.7	कोयना	200 मृत
7	19 जनवरी 1975	6.2	किन्नौर (हिमाचल)	44 मृत, भूस्खलन
8	21 अगस्त 1988	6.6	नेपाल-बिहार सीमा	1000 मृत
9	20 अक्तूबर 1991	6.6	उत्तर काशी	1500 से ज्यादा मृत
10	30 सितबर 1993	6.3	लातूर	लगभग 10,000 मृत, व्यापक नुकसान
11	22 मई 1997	6.0	जबलपुर	40 मृत
12	29 मई 1999	6.8	चमोली	103 मृत
13	26 जनवरी 2001	6.9	भुज (गुजरात)	25,000 से ज्यादा मरे, व्यापक नुकसान

उत्तर दिशा में लगभग 6 सेमी. प्रतिवर्ष की गति से चलता हुआ करीब 4 करोड़ साल पहले विशाल यूरेशियन प्लेट से टकराया । इस टकराव के फलस्वरूप भारतीय प्लेट यूरेशियन प्लेट के नीचे घुसने लगी तथा क्रस्ट और अन्य चट्टानों के एक दूसरे के ऊपर एकत्र होते रहने के कारण उत्तर में दोनों प्लेटों के संधि क्षेत्र में ऊंची-ऊंची हिमालय की पर्वत श्रेणियाँ बनने लगीं । आजकल जहां हिमालय पर्वत है, पहले वहां समुद्र था जिसे टेथिस समुद्र कहते थे तथा विश्व की सबसे ऊंची चोटी एवरेस्ट पर पाये जाने वाले पत्थर इसी टेथिस समुद्र में बने थे । यह टकराव आज भी जारी है जिस कारण हिमालय ऊंचा होता जा रहा है । टकराव की यह गति हमारे नाखून बढ़ने की गति के बराबर है । उत्तर-पश्चिम में हिंदुकुश पर्वत श्रेणियों से लेकर उत्तर - पूर्व में असम तथा म्यांमार (बर्मा) की पहाड़ियों तक का संपूर्ण क्षेत्र भूकंपों की दृष्टि से सर्वाधिक क्रियाशील है तथा विख्यात एल्पाइड भूकंपीय पट्टी का एक हिस्सा है जो इन्डोनेशिया से लेकर स्पेन तक फैली हुई है । भारत के कुछ प्रमुख भूकंपों की सूची तालिका - 1 में दी गयी है ।

वैसे तो भारत का लगभग 55% भाग भूकंप प्रभावित क्षेत्र है परंतु कुछ भागों में ज्यादा तीव्रता के भूकंप ज्यादा बार आते हैं तथा कुछ भागों में कम, अर्थात देश के विभिन्न भागों में भूकंपों की तीव्रता तथा आवृत्ति के हिसाब से भूकंपीय जोखिम का परिमाण अलग-अलग है । अतः सभी क्षेत्रों में समान तीव्रता के भूकंपों को सहने योग्य इमारतें बनाना आर्थिक दृष्टि से ठीक नहीं होगा । भारत के विभिन्न क्षेत्रों के भूकंप जोखिम तथा अन्य भू-विवर्तनिक प्राचलों के आधार पर भारतीय मानक संस्थान ने भारत का भूकंप कटिबंधीय मानचित्र या सिस्मिक जोनिंग मैप बनाया है जो चित्र-5 में दर्शाया गया है । इस मानचित्र के अनुसार पूरे भारतवर्ष को 5 जोनों में बाँटा गया है । जोन-1 में भूकंप की तीव्रता I से V तक (कोई जोखिम नहीं), जोन-2 में अधिकतम VI (कम जोखिम), जोन-3 में अधिकतम VII (सामान्य जोखिम), जोन-4 में अधिकतम VIII (अधिक जोखिम), तथा जोन-5 में तीव्रता IX या उससे अधिक (बहुत ज्यादा जोखिम) के

भूकंप आ सकते हैं। ये तीव्रताएं मरकेली पैमाने पर हैं जिस पर तीव्रता XII का मतलब सर्वनाश होता है। यद्यपि 1993 के लातूर, जो कि जोन-1 में स्थित है, में आये 6.3 परिमाण के भूकंप ने इस जोनिंग मानचित्र पर सवालिया निशान लगा दिया है, परंतु फिर भी इस मानचित्र से किसी क्षेत्र विशेष के भूकंप जोखिम का अंदाजा लगाने में बहुत सहायता मिलती है।

भूकंपों का पूर्वानुमान

उन्नीस सौ सत्तर के दशक में अमरीका के ब्लूमाउन्टेन लेक (1971) भूकंप तथा चीन के 4 फरवरी 1975 के हाइचेंग भूकंप (परिमाण 7.3) की सफल भविष्यवाणी से भूकंपों के पूर्वानुमान की आशाओं को बहुत अधिक बल मिला। परंतु इनके बाद आज तक किसी बड़े भूकंप की सफल भविष्यवाणी का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। यहां यह बताना आवश्यक है कि वही चीनी वैज्ञानिक उन्हीं सब उपकरणों और संसाधनों के रहते हुए 28 जुलाई 1976 के तांगशेन भूकंप (परिमाण > 8.0) का पूर्वानुमान करने में असफल रहे थे जिस कारण लगभग साढ़े छह लाख लोग मर गये थे। कैलीफोर्निया के पार्कफील्ड तथा जापान के टोकई क्षेत्रों में भूकंपों के पूर्वानुमान के लिए "भूकंपीय घटना तंत्र" नामक सघन मॉनीटरिंग कार्यक्रम पिछले 10 वर्षों से भी ज्यादा समय से चल रहा है परंतु अभी तक इन वैज्ञानिकों को कोई सुफलता नहीं मिली है।

पूर्व में आये भूकंपों के सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा दीर्घकालिक (10-20 वर्ष) भविष्यवाणी किसी हद तक संभव है परंतु इसका कोई व्यवहारिक उपयोग नहीं है। कोई भी भविष्यवाणी तब तक उपयोगी नहीं हो सकती जब तक कि वह भूकंप आने का स्थान, समय और परिमाण सही-सही न बता सके। फिलहाल तो ऐसी अल्पकालिक भविष्यवाणी संभव नहीं है।

भूकंपों का पूर्वाभास तो नहीं हो पाता परंतु कुछ भूकंपों के आने से पूर्व कुछ असामान्य घटनाएं अवश्यदेखी गयी हैं जो इस प्रकार हैं : (1) जमीन के स्तर में परिवर्तन (2) पी- तथा एस- तंरगों की गति के अनुपात में परिवर्तन (3) पृथ्वी के भू-चुंबकीय क्षेत्र में परिवर्तन (4) कुओं के पानी के रंग तथा जल स्तर में परिवर्तन (5) कुओं में रेडॉन गैस की मात्रा में बढ़ोत्तरी (6) बड़े भूकंप से पहले आने वाले छोटे-छोटे भूकंपों की संख्या में बढ़ोत्तरी (7) भूकंप से पहले ध्वनि या प्रकाश का निकलना (8) जानवरों - जैसे चूहों, सांपों, कुत्तों, घोड़ों आदि का असामान्य व्यवहार। ये सारी घटनाएं सभी बड़े भूकंपों से पहले नहीं होती देखी गयी हैं तथा ये घटनाएं भूकंपों के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी हो सकती हैं अत: इन्हें भूकंपों के पूर्वाभास के रूप में नहीं स्वीकारा जा सकता है।

आजकल, मुख्यत: भारत में ज्योतिष एवं ग्रहों की स्थिति आदि द्वारा भी भूकंपों की भविष्यवाणियाँ की जा रही हैं। खासकर, गुजरात जैसे बड़े भूकंप के बाद तो इन भविष्यवाणियों की बाढ़ सी आ जाती है। इस विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि ऐसी भविष्यवाणियों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। इन भविष्यवक्ताओं को आने वाले भूकंपों की बजाय, पहले आ चुके भूकंपों पर अपनी ज्योतिषीय तथा गणना विधियों का परीक्षण करके इन विधियों तथा इनसे प्राप्त सफलता एवं असफलता के आंकड़ों को ईमानदारी से प्रकाशित करना चाहिए। चंद्र, सूर्य तथा अन्य ग्रह पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र तथा ज्वार-भाटों को तो प्रभावित करते हैं परंतु इनका, भूकंपों की उत्पत्ति से कोई संबंध नहीं देखा गया है।

किसी स्थान पर भूकंप आने की भविष्यवाणी करने से पहले अत्यंत सोच-विचार एवं सावधानी बरतने की आवश्यकता है क्योंकि इससे कई सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी महानगर में भूकंप आने की भविष्यवाणी की जाती है तो उससे कितनी अफरा-तफरी मच जायेगी इसकी कल्पना भी करना मुश्किल है। सब काम-काज छोड़कर लोगों के पलायन से कितनी आर्थिक हानि होगी इसका भी अंदाजा लगाना मुश्किल है। इस सबके बाद अगर भविष्यवाणी झूठी निकली तो ? दूसरी बात, भूकंप जैसी त्रासदी में महानगर को खाली कराने से जन हानि तो बच जायेगी

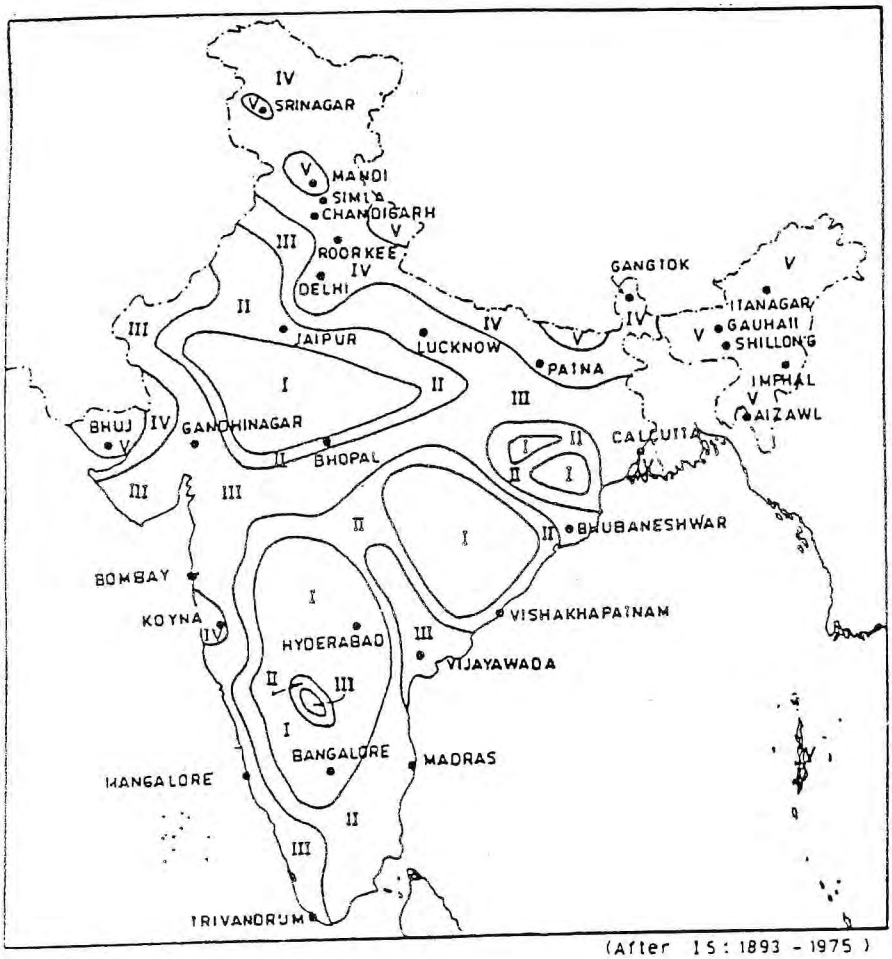

जोन I - तीव्रता ⩽ V , जोन II - तीव्रता VI, जोन III - तीव्रता VII,
जोन IV - तीव्रता VIII , जोन V - तीव्रता ⩾ IX

चित्र - 5 : भारत का ज़ोनिंग मानचित्र

परंतु अरबों की उस संपत्ति को कैसे बचायेंगे जो धराशायी हो जायेगी । इससे बेहतर क्या यह नहीं होगा कि हम पहले से ही भूकंप प्रतिरोधी इमारतें बनायें जिससे कि हमें भूकंप की भविष्यवाणी की चिंता ही न रहे ?

क्या भूकंप रोके या पैदा किये जा सकते हैं ?

मानव निर्मित किसी भी उपकरण, संसाधन, संरचना या शस्त्र (परमाणु-बम) से न तो भूकंपों को रोका जा सकता है, न प्रेरित किया जा सकता है और न ही पैदा किया जा सकता है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि किसी भी भूकंप या परमाणु विस्फोट से निकली ऊर्जा का ज्यादातर भाग उत्केंद्र क्षेत्र में ही चट्टानों का तोड़ने पिघलाने और वाष्पीकरण में खर्च हो जाता है ।

इसके बाद इनमें इतनी ऊर्जा बचती ही नहीं है कि वह सैकड़ों किमी. दूर स्थित किसी फॉल्ट को सक्रिय करके वहां भूकंप पैदा कर सके । हां, जलाशय द्वारा भूकंप प्रेरित होने के कुछ उदाहरण अवश्य देखे गये हैं परंतु उनका कारण जलाशय के नीचे पहले से ही फॉल्ट

का स्थित होना पाया गया है जो पानी के रिसाव से चिकना होकर समय से पहले ही छोटे परिमाण के भूकंप उत्पन्न कर सकता है । अब तक विश्व का सबसे बड़ा जलाशय प्रेरित भूकंप (परिमाण 6.3) 11 दिसंबर 1967 को कोयना (महाराष्ट्र) में आया है ।

इस सच्चाई के उजागर होने के बाद कई बार यह प्रश्न उठता है कि क्या किसी फॉल्ट को पानी या अन्य पदार्थों से चिकना करके, फलस्वरूप अनेकों छोटे-छोटे भूकंप पैदा करके, उस फॉल्ट द्वारा होने वाले किसी बड़े भूकंप से बचा जा सकता है ? इसका भी उत्तर दुर्भाग्य से नकारात्मक ही है क्योंकि जैसा पहले बताया जा चुका है कि 7 परिमाण के एक भूकंप से बचने के लिए सुरक्षित परिमाण 4.0 के बत्तीस हजार से ज्यादा भूकंप पैदा करने होंगे जो हमारे वश में नहीं है । इसके अतिरिक्त जमीन के अंदर फॉल्ट सैकड़ों कि. मी. तक लंबे हो सकते हैं जिन्हें चिकना करने के लिए इतने लंबे-चौड़े जलाशय बनाना संभव नहीं होगा ।

आखिर क्या करना चाहिए ?

यह विडंबना ही है कि मुख्यतः पी-तरंगों पर आधारित भूकंप विज्ञान में भूकंपों से संबंधित तीनों P (Prediction, Prevention and Production) का उत्तर नकारात्मक है । अर्थात भूकंपों का पूर्वानुमान, रोकना तथा उत्पन्न करना मनुष्य के वश की बात नहीं है । तो बस एक ही रास्ता बचता है - उनसे अपने बचाव का । कहते हैं कि भूकंप स्वयं कभी इन्सानों को नहीं मारते बल्कि इन्सानों द्वारा बनायी गयी इमारतें ही उनकी मौत का कारण बनती हैं । भूकंप तो जैसे आते रहे हैं, वैसे ही आते रहेंगे । समाज को उनके साथ रहना सीखना होगा, उनको समझ कर तथा उनसे होने वाली हानि से बचकर ।

इसके लिए भारत के विभिन्न प्रांतों में संभावित भूकंप जोखिम के आधार पर भारतीय मानक संस्थान तथा अन्य संस्थानों ने भूकंप-सह्य इमारतें बनाने की विधियाँ तथा उनकी डिजाइनें विकसित की हैं, उनका पालन होना चाहिए । इसके लिए कानून तथा जनता के सहयोग की आवश्यकता पड़ेगी । सार्वजनिक भवनों जैसे स्कूल, सिनेमा घर, अस्पताल आदि का निर्माण तो हर हाल में भूकंप प्रतिरोधी, होना चाहिए क्योंकि इन स्थानों पर एक साथ कई लोगों की जानें जा सकती हैं ।

भूकंप महसूस करते ही घबराकर बाल्कनी या सीढ़ियों की तरफ नहीं भागना चाहिए बल्कि घर में ही किसी सुरक्षित स्थान जैसे खाने की मेज या पलंग के नीचे छुप जाना चाहिए । ऊपरी मंजिलों पर रहने वाले लोगों को फ्लैट की बाहरी दीवारों के बजाय अंदरूनी दीवारों के पास शरण लेनी चाहिए क्योंकि बाहरी दीवार के गिरते ही घर के बाहर नीचे गिरने का खतरा रहता है।

भूकंप के समय गैस या बिजली स्विच बिल्कुल नहीं चलाना चाहिए । यदि आप सड़क पर हैं तो ऊंची इमारतों, बिजली के खंबों, तारों तथा पेड़ों से खुद को बचाइए । यदि कार चला रहे हैं तो तुरंत बंद करके खुली जगह में आ जाइए ।

ऐसा देखा गया है कि विकसित देशों जैसे अमरीका, जापान आदि में बड़े भूकंपों से भी उतना नुकसान नहीं होता है जितना कि भारत जैसे विकासशील देशों में छोटे-छोटे भूकंप कर जाते हैं । इसका मुख्य कारण वहां की इमारतों का बेहतर डिजाइन तथा बेहतर निर्माण सामग्री का प्रयोग है । हमें भी इन देशों से सीख लेकर, भविष्यवाणी करने की बजाय, भूकंपों से हानि को कम करने का प्रयास करना चाहिए ।

संदर्भ :

1. बी. जी. देशपांडे (1987). अर्थक्वेक्स, एनीमल्स एंड मैन। महाराष्ट्र एसोसिएशन फॉर कल्टीवेशन ऑफ साइंस, पुणे, पृष्ठ-5.

2. क्लार्क, आर. डी. (1984). अर्थक्वेक प्रिडिक्शन, जियोफिजिक्स - दी लीडिंग एज़ ऑफ एक्सप्लोरेशन 24. 29.

❑❑❑

एड्स एक जानलेवा रोग : जानकारी एवं बचाव

निमेश चंद्र मिश्रा एवं अरविंद सिंह नेगी
केंद्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान,
लखनऊ - 226 015 (उ. प्र.)

वर्तमान समय में पूरा विश्व एड्स की भयावह स्थिति से चिंतित है। तेजी से फैल रहे इस विषाणु ने मानव जाति के समक्ष एक चुनौती पैदा की है। इसकी रोकथाम व इलाज दोनों क्षेत्रों में कुछ सफलताएँ हासिल हुई हैं। अभी भी इस विषाणु का समूल नाश एक कठिन कार्य सा बना हुआ है। प्रस्तुत लेख में इस रोग के विषाणु के जीवन चक्र, संक्रमण व बचाव पर लेखक कुछ जानकारी दे रहे हैं।

एड्स (AIDS) जो कि एक्वायर्ड इम्यून डेफिसियेन्सी सिन्ड्रोम (Acquired Immune Deficiency Syndrome) का संक्षिप्त रूप है, एक घातक रोग है। यह एक रिट्रो-विषाणु (Retrovirus) से होता है जिसे ह्यूमन इम्यून डेफिसियेन्सी वाइरस (HIV) कहते हैं। AIDS का विस्तृत रूप इस प्रकार है :

A = Acquired = जुटाई या प्राप्त की गयी।
I = Immune = शरीर की आंतरिक सुरक्षा या रोग से लड़ने की क्षमता।
D = Deficiency = क्षमता में कमी।
S = Syndrome = रोगों का समूह जो कि किसी बीमारी को इंगित करता है, सह-लक्षण।

एड्स अपने आप में एक बीमारी नहीं है, बल्कि यह शरीर में उपस्थित टी-कोशिकाओं को खत्म करके उनकी बीमारी से लड़ने की क्षमता को कम कर देती है। इससे मौका पाकर विभिन्न बैक्टीरिया, प्रोटोजोआ, कवक व विषाणु शरीर पर आक्रमण कर उसे संक्रमित कर देते हैं। जहां एक ओर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने एड्स की गंभीरता पर टिप्पणी की है कि यह विश्व स्वास्थ्य पर एक आकस्मित विपत्ति है जिसके लिए विश्व स्तर पर सहयोग व इससे निपटने की जरूरत है, वहीं दूसरी ओर चिकित्सा विज्ञान के अनुसार किन्हीं अज्ञात कारणों से किसी व्यक्ति की कोशिकीय प्रतिरक्षण या रोगों से लड़ने की क्षमता समाप्त होने को एड्स से संबंधित माना जाये।

इतिहास :

एड्स के लिए जिम्मेदार ह्यूमन इम्यून डेफिसियेन्सी वाइरस सबसे पहले मध्य अफ्रीका के हरे बंदरों में पाया गया और इनमें यह कई शताब्दियों तक एड्स के बिना पाया गया। मनुष्य में एड्स सर्वप्रथम 1979 में अमरीका के समलैंगिक नवयुवकों में प्रकाश में आया, लेकिन चिकित्सा समुदाय ने इस पर ध्यान 1981 से दिया। भारत में इस घातक बीमारी पर ध्यान तब केंद्रित हुआ जब अप्रैल 1986 में तमिलनाडु की छः वेश्याएँ इससे संक्रमित पायी गयीं। एड्स इस समय विश्व के लगभग हर देश में फैल चुका है। विश्व में लगभग एक करोड़ लोग इसकी चपेट में आ गये हैं जिनमें लगभग 15 लाख लोग अकेले अमरीका में ही हैं। अमरीका में रोग-रोकथाम केंद्रों की एक रिपोर्ट के अनुसार 1992 में एड्स के लगभग ढाई लाख रोगियों में से डेढ़ लाख से अधिक मर चुके थे। इस रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1999 के अंत में पूरे विश्व में एड्स के अनुमानतः 3.43 करोड़ रोगी हैं। विश्व में अब तक इसके 1.88 करोड़ रोगी मर चुके हैं। ये सारे आंकड़े चौंकाने वाले हैं तथा यह विषाणु जिस तरह से फैल रहा है, यह मानव जाति के लिए एक चुनौती

बन गया है । इस बीमारी से निपटने के लिए भरसक प्रयास भी जारी हो गये हैं ।

राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन (NACO) की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1999 के अंत में भारत में एड्स के लगभग 35 लाख रोगी हो चुके हैं । इनमें लगभग 78.6 प्रतिशत पुरुष हैं व शेष महिला रोगी हैं । इनमें अधिकांशतः 15 से 49 उम्र के हैं । महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, मणिपुर व नागालैंड एड्स से सबसे ज्यादा संक्रमित राज्य घोषित किये गये हैं ।

भारत में इस भयावह रोग से निपटने की प्रक्रिया काफी देर से शुरू की गयी । शुरू में इसे मात्र पश्चिमी देशों की बीमारी समझकर इस पर ध्यान नहीं दिया गया । लेकिन दिन-प्रतिदिन इसके बढ़ते हुए रोगियों की संख्या ने सरकार का ध्यान आकृष्ट किया है, जिससे इसके लिए एक विशेष नीति बनायी गयी है । वर्ष 1992 में भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद ने पुणे में राष्ट्रीय एड्स अनुसंधान संस्थान (NARI) की स्थापना की ।

एड्स विषाणु की संरचना व जीवन-चक्र :

विभिन्न शोधों से यह निष्कर्ष निकला है कि इस विषाणु की जीन संरचना (genome) काफी क्लिष्ट है । इसमें कम से कम नौ गुणसूत्र होते हैं । इनमें से केवल निम्न तीन गुणसूत्र की क्रियाविधि ज्ञात है, क्योंकि ये पशुओं में पाये जाने वाले रिट्रो विषाणु जैसे ही हैं ।

1) गैग (Gag) : यह आंतरिक प्रोटीन (core proteins) p17 व p24 को संकेतबद्ध करता है ।
2) पोल (Pol) : यह विभिन्न एन्जाइमों रिवर्स ट्रान्सक्रिप्टेज प्रोटीएज व इन्टीग्रेज को संकेतबद्ध करता है ।
3) इन्व (Env) : यह इन्वलेप प्रोटीन 9p-120 को संकेतबद्ध करता है ।

अन्य गुणसूत्र इस प्रकार हैं :

4) विफ (Vif) : Virion infecting factor
5) नेफ (Nef) : Negative regulatory factor
6) रेव (Rev) : Differential regulator
7) वीपीयू (Vpu) : Control efficent virion budding, यह HIV-2 में नहीं पाया जाता है ।
8) टैट (Tat) : Trans activator

ये सभी गुणसूत्र या तो अकेले ही या फिर दूसरे गुणसूत्रों के साथ मिलकर अपना कार्य करते हैं ।

एड्स के विषाणु का जीवन-चक्र ग्राही कोशिका (host target cell) से जुड़ने पर शुरू होता है । यह ग्लाइकोसाइलिक के मजबूत बंध द्वारा विषाणु के इन्वलेप प्रोटीन 9p-120 से जुड़ा रहता है । तंत्रिका कोशिकाएँ, आंत श्लेष्मक कोशिकाएं (Glial cells, cells of gut epithelium) और अस्थि मज्जा उत्पादक कोशिकाएँ (bone marrow progenator cells) भी इससे संक्रमित हो सकती हैं ।

बड़ी (Macophage) कोशिकाएं इस विषाणु के कोशिकीय प्रभावों से कम संक्रमित होती हैं तथा यह HIV-1 के लिए आवश्यक रूप से उसके गुणन व पड़ाव (Harboring) के लिए सहायक होती हैं, जबकि T- 4 सहायक/प्रेरक कोशिका नष्ट कर देते हैं जिससे कि धीरे-धीरे इन कोशिकाओं की कमी हो जाती है और मौका पड़ने पर संक्रमित होकर एड्स की शुरुआत होती है । फलस्वरूप शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता में अत्यधिक कमी हो जाती है ।

ग्राही कोशिका की सतह पर जुड़ने के बाद विषाणु की बाहरी झिल्ली से ग्राही कोशिका की बाहरी झिल्ली मिल जाती है । इस समय वाइरॉन आनुवांशिक RNA व रिवर्स ट्रान्सक्रिप्टेज एन्जाइम को लक्ष्य कोशिका के कोशिका द्रव्य में प्रवेश करा देता है । इस संधि पर रिवर्स ट्रान्सक्रिप्टेज तीन मुख्य कार्य करता है । पहले यह RNA से DNA बनाना शुरु करता है । दूसरा यह एन्जाइम के राइबोन्यूक्लीएज-H (Rnase-H) हिस्से से जीनोमिक ऋणात्मक स्ट्रेंड RNA को खंडित करता

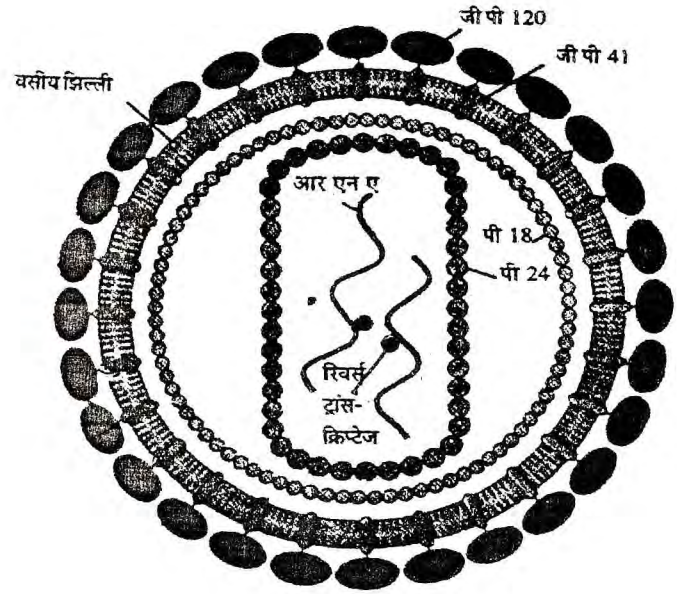

एड्स विषाणु की संरचना

है। तीसरा, यह नये DNA स्ट्रेंड को रिवर्स ट्रान्सक्रिप्टेज से उत्प्रेरित कर कई अन्य DNA बना देता है। यह दोहरा हेलिक्स होता है, इसे प्रोवाइरल DNA भी कहते हैं। यह सीधे और गोल संरचना से केंद्रक में स्थानांतरित होकर ग्राही गुणसूत्र में परिवर्तित होता है। यहां पर यह विषाणु सभी आवश्यक चीजें प्राप्त कर और संक्रमित कोशिकाएं बनाना शुरू कर देता है। यह विषाणु ग्राही शरीर में कुछ महीनों से लेकर 8-10 वर्षों तक निष्क्रिय अवस्था में रह सकता है तथा विभिन्न कारणों से सक्रिय हो सकता है चाहे वे ग्राहीकारक हों या फिर अन्य जनित विषाणु एप्सटीन-बार (Epstin-Bar), हरप्स (Herpes) या HTLV-1 हों। सक्रिय होने पर विषाणु आनुवंशिक RNA व संदेशवाहक RNA की सहायता से विषाणु प्रोटीनों का निर्माण करती हैं जो कि सतह पर जाकर विषाणु अंकुरण करती हैं। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप कई ग्राही कोशिकाएं (host cells) मर जाती हैं और नव निर्मित विषाणुकण जीवन-चक्र शुरू करने के लिए नये लक्ष्य कोशिकाओं को ढूंढने लगता है।

संक्रमण की प्रक्रिया :

एड्स, रिट्रोवाइरस समूह व लेन्टीवाइरेन (Lentivirine) उपसमूह के एक छोटे से विषाणु से होता है। इसे सर्वप्रथम विश्व प्रसिद्ध संस्थान पेरिस के लुक-मोन्टेगनियर ने 1982 में पहचाना व बाद में 1983 में अमरीका में रॉबर्ट गैलो व उनके साथियों ने इसे निकाला। शुरुआत में विश्व के वैज्ञानिकों ने इस विषाणु को T-Lymphyte virus HTLU, ARU आदि भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित किया, लेकिन अब सभी लोग इसे एच आई वी विषाणु के नाम से जानते हैं। यह विषाणु बहुत ही छोटा (0.0001 मिमी. व्यास का) होता है। इसे रक्त से बाहर होने पर 70% एल्कोहॉल / 2% साइडेक्स घोल / 1% घरेलू ब्लीचिंग विलयन / 3% हाइड्रोजन परॉक्साइड (H_2O_2) या 5% फॉरमेल्डिहाइड विलयन के साथ उबालने पर खत्म या

निष्क्रिय किया जा सकता है। लेकिन रक्त में इसे मारना असंभव सा है।

ग्रसित एच आई वी वाइरस दो तरह का होता है - HIV-1 इपीडेमिक व इन्डेमिक HIV-2।

एड्स फैलने के कारण :

मुख्य रूप से यह निम्न चार कारणों से फैलता है :-

1) लैंगिक संबंधों से : यह एड्स फैलने का एक बड़ा कारण है। यह भी दो कारणों से हो सकता है ;
अ) एक से अधिक लोगों से संबंध ब) समलैंगिक संबंधों से।

इनमें एड्स संक्रमित वीर्य जब टूटी-फूटी रक्त कोशिकाओं के संपर्क में या फिर एक व्यक्ति के रक्त कण दूसरे व्यक्ति के रक्त कणों के संपर्क में आते हैं तो एड्स फैलता है। आस्ट्रेलिया की एक चिकित्सा रिपोर्ट के अनुसार एड्स विषाणु हवा के कणों के साथ शल्यागार में सर्जन के मास्क के रास्ते उसके फेफड़ों में प्रवेश कर सकते हैं, लेकिन हवा के द्वारा एच आई वी के फैलने पर अभी विवाद है। लेकिन लंबे समय तक गहरे चुंबन से लार के द्वारा एच आई वी फैल सकता है। अमरीका ने तो लार में एच आई वी के परीक्षण का तरीका भी निकाल लिया है। यह एक आसान व काफी सही परीक्षण है।

2) शरीर में रक्त चढ़ाने से :

यह एड्स फैलने का एक बड़ा कारण है। एच आई वी संक्रमित रक्त रक्तग्राही को भी एड्स से संक्रमित कर सकता है।

3) संक्रमित उपकरणों से : यह संक्रमित सुई, रेजर, ब्लेड इत्यादि से फैल सकता है।

4) संक्रमित मां से बच्चों को : एच आई वी जीवन पर्यंत रहने वाला विषाणु माना जाता है। यह रोग संक्रमित मां से उसके भ्रूण में चला जाता है। इसके अलावा संभवतः जन्म के समय योनि स्राव व स्तनपान से भी यह रोग फैलता है। यहां पर विशेष रूप से यह भी उल्लेख करना जरूरी है कि एड्स संक्रमित व्यक्ति के साथ रहने, खाना खाने, हाथ मिलाने से यह रोग नहीं फैलता है। इसके अलावा मच्छर के काटने से भी इसका विषाणु नहीं फैलता है।

रोग के लक्षण :

रोग के प्रारंभिक दौर में बाजुओं व पैरों में सूजन के साथ बैंगनी रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं व भयंकर निमोनिया भी हो सकता है। मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं :

1) एक ही महीने में शरीर के वजन में 10 प्रतिशत से ज्यादा कमी होना।
2) महीने भर से ज्यादा समय तक भयंकर रूप से हैजा होना।
3) पांच हफ्तों तक लगातार या रुक-रुक कर बुखार बना रहना।

कुछ अन्य लक्षण :

1) 5-6 हफ्तों तक लगातार खांसी बनी रहना।
2) लसीका ग्रंथि में सूजन बनी रहना।
3) रात को पसीना आते रहना।

रोगी में ये सभी लक्षण होने पर वह एच आई वी संक्रमित हो सकता है लेकिन बीमारी की सही जानकारी इसके ELISA (Enzyme Linked Immuno Serbent Assay) परीक्षण से ही होती है।

एड्स की रोकथाम :

इस रोग में इलाज से ज्यादा जरूरी रोकथाम है। इसे रोकने के लिए इसके संक्रमण के माध्यमों को सावधानीपूर्वक समाप्त करना जरूरी है जैसे :

1) रक्तदान।
2) ग्रसित सुई का पुनः उपयोग न करना।
3) असुरक्षित यौन संबंध रोकना।
4) ग्रसित महिला रोगी को मां बनने से रोकना।

इन सभी बातों की पूरी-पूरी जानकारी हर व्यक्ति को होना आवश्यक है।

एड्स का इलाज :

इससे तीन मुख्य तरह से निपटा जा सकता है :-

1) टीके बनाकर
2) प्रतिकाय (एंटीबॉडीज)
3) औषधि

टीके बनाकर

एड्स फैलने से रोकने के लिए इसके टीके तैयार करना जरूरी है लेकिन निम्न कारणों से अभी तक इस कार्य में सफलता नहीं मिली है :-

i) इसके परीक्षण के लिए स्वयंसेवियों का मिलना कठिन है व नैतिक दायित्व ।
ii) HIV-1 में अचानक आनुवंशिक परिवर्तन उत्परिवर्तन (Mutation) जल्दी-जल्दी हो जाना ।
iii) परीक्षण हेतु उपयुक्त जानवरों की कमी होना ।

एन्टीबॉडीज

बैक्टीरिया व कवक के एन्टीबॉडीज बनाये जा सकते हैं लेकिन वाइरस (विषाणु) के नहीं बनाये जा सकते ।

औषधि

ये दो प्रकार की हो सकती हैं :-

1) वाइरस DNA को छांटकर उन्हें समाप्त करके - एड्स के प्रत्येक रोगी के आनुवांशिक प्रोवाइरल DNA गुणसूत्र होता है । जिससे कि रोगी उम्र भर निश्चित रूप से इससे संक्रमित रहता है । यदि इस वाइरल DNA को किसी औषधि से छांटकर नष्ट कर दिया जाय तो संक्रमण खत्म किया जा सकता है ।

2) एड्स विषाणु की विभिन्न अवस्थाओं को रोककर उसकी सक्रियता का समाप्त करके - जब एच आई वी संक्रमित नयी वाइरोन कोशिकाएं नये ग्राही पर आक्रमण हेतु तैयार रहती हैं, उनके लक्ष्य में व्यवधान उत्पन्न करके इसके संक्रमण को रोका जा सकता है ।

भविष्य में एक आदर्श औषधि वही होगी जोकि एड्स विषाणु को खत्म करके रोगी की रोग से लड़ने की क्षमता की क्षतिपूर्ति करके, पुनर्स्थापित कर सके ।

एंटीएड्स एजेंट्स

एंटीएड्स एजेंट्स बनाने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना जरूरी है :-

1) विषाणु के लिए एक निश्चित लक्ष्य निर्धारित करना।
2) इसके निरोधक का ग्राही कोशिकाओं में पहुंचना ।
3) इनका संक्रमित कोशिकाओं व स्वस्थ कोशिकाओं में विभेद कर पाना ।
4) इन सब में सबसे प्रमुख है कि इनका स्वस्थ कोशिकाओं पर बुरा असर नहीं पड़ना चाहिए तथा जब ये संक्रमित कोशिका में पहुंचे तो वायरस को पूरी तरह नष्ट कर दें ।

इन औषधियों को इनके विभिन्न जगहों पर एड्स वायरस के प्रभाव को खत्म करने के आधार पर तीन तरह से विभाजित किया गया है :-

1) एन्जाइम्स (रिवर्स ट्रान्सक्रिप्टेज, प्रोटिएज या ग्लाइकोसाइडेज निरोधक) ।
2) वाइरल प्रक्रिया (वायरस बंध प्रक्रिया) रोकने वाले ।
3) आनुवांशिक उत्पादों को रोकने वाले ।

(अ) रिवर्स ट्रान्सक्रिप्टेज निरोधक

इनमें प्रमुख औषधियां जिडोबुडीन (AZT), डाइडेनोसीन (DDI), स्टेबुडीन (D4T), जैलसिटाबीन (DDC) तथा लेमीबुडीन हैं । रासायनिक संरचना के अनुसार इन सभी में एक प्यूरान व पिरिमिडीन न्यूक्लियस मौजूद है । इन सभी में AZT सबसे ज्यादा प्रभावशाली है । लेकिन इनसे कुछ विपरीत प्रभाव भी शरीर पर पड़ते हैं । इनमें रक्ताल्पता, अनिंद्रा, हिपेटाइटिस, अल्सर व डाइरिया आदि मुख्य हैं ।

(ब) अन्य निरोधक

इनमें मुख्य रूप से नेविरापाइन, डेलाविरीडीन, मिसलेट, एवारोन इत्यादि हैं । ये HIV-2 का HIV - 1 का प्रतिरूपण रोकते हैं, लेकिन HIV-2 के प्रति ये निष्क्रिय हैं ।

(स) प्रोटिएज निरोधक

HIV-1 विषाणु को संपूर्ण जीवन काल में इस एन्जाइम की आवश्यकता रहती है । यह एन्जाइम पॉलीपेप्टाइट के पूर्वगामी के खंडन हेतु आवश्यक है जोकि विषाणु के संरचनात्मक प्रोटीन व एन्जाइम्स बनाता है । इस एन्जाइम को निष्क्रिय करने वाली औषधियों में

इन्डीनावीर सल्फेट, सेक्वीनावीन मिसलेट, नेलफिनाबी इत्यादि प्रमुख हैं ।

(ड) वायरस बंध निरोधक

ये औषधियां विषाणु को ग्राही कोशिकाओं से जुड़ने से रोकती हैं। इनमें गेलेक्टोसिल सेरामाइड, सुरामीन सोडियम व कुछ पिराजीन व्युत्पन्न प्रमुख हैं ।

नवीनतम शोध कार्य :

इन औषधियों के अलावा हाल ही में कुछ अन्य रासायनिक पदार्थों में एच आई वी विषाणु को ख़त्म या निष्क्रिय करने का गुण पाया गया है । इनमें हाईपरिसिन काफी महत्वपूर्ण है । यह एच आई वी विषाणु को ग्राही के रक्त में पूरी तरह से समाप्त कर देता है तथा इसका शरीर पर कोई कुप्रभाव भी नहीं पाया गया । कुछ अन्य पदार्थों में Ay-9944, ओजीनोलिक एसिड एस्टर, फाइलामाइटीसिन, सालास्पर्मिक एसिड, ओटोनोथिन-B में भी एच आई वी विषाणु को निष्क्रिय या ख़त्म करने की प्रवृत्ति पायी गयी । हाल ही में भारत के विश्व प्रसिद्ध केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान को भी इस क्षेत्र में कुछ सफलता मिली है । यहां कुरकुमिन नामक पदार्थ में भी एंटी एच आई वी गुण पाया गया । किंतु यह अभी प्रारंभिक अवस्था में हैं ।

वर्तमान समय में चिकित्सा विज्ञान के पास HIV-1 वायरस से निपटने के लिए कई तरह की औषधियां मौजूद हैं । इनमें से कुछ तो शक्तिशाली भी हैं । लेकिन अभी भी इस विषाणु का समूल नाश चिकित्सा क्षेत्र के वैज्ञानिकों के लिए एक चुनौती बना हुआ है । इस विषाणु में जल्दी-जल्दी उत्परिवर्तन होना भी मुश्किलें पैदा कर रहा है । इस क्षेत्र में अभी भी काफी शोध करना बाकी है । एड्स के इलाज के साथ-साथ इसके विषाणु से बचाव करना ज्यादा जरूरी हो गया है, क्योंकि यह विषाणु काफी तेजी से मानव जाति को अपनी चपेट में ले रहा है । एड्स की जानकारी मानव समाज को देने पर ही इसका बचाव संभव हो सकता है । जन-साधारण में इस बीमारी की जानकारी व चेतावनी के लिए एक दिसंबर को विश्व एड्स दिवस के रूप में घोषित किया गया है व लाल रंग के रिबन को इसके पहचान चिन्ह के लिए चुना गया है ।

❑❑❑

'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं । परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार ली गयी है ।

– संपादक

विवेचन

पारिभाषिक शब्दावली

डॉ. दिनेश मणि,
डी. एस-सी., पूर्व संपादक, "विज्ञान",
47/29, जवाहर लाल नेहरू रोड,
इलाहाबाद 211 002 (उ. प्र.)

पारिभाषिक शब्द वह शब्द या अभिव्यक्ति है जो मनुष्य की विशिष्ट गतिविधियों या मानव प्रकृति के किसी विशेष पहलू से संबंधित ज्ञान-विज्ञान की शाखा के विद्वान के लिए विशेष महत्व रखती है। पारिभाषिक शब्द वास्तव में विशेषज्ञों द्वारा अपने विचारों को ठीक-ठाक व्यक्त करने के लिए गृहीत-अनुकूलित या आविष्कृत प्रतीक है। प्रत्येक शब्द या अभिव्यक्ति किसी विशेष विचार या संकल्पना को व्यक्त करने की संक्षिप्त विधि है। इसे केवल तदर्थ शब्द समझना चाहिए और इसके अर्थ का सही-सही अंदाज नहीं लगाया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पारिभाषिक शब्द भाषा के वे शब्द हैं जो ज्ञान-विज्ञान के किसी क्षेत्र में विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। पारिभाषिक शब्दों के अर्थ तत्त्व को स्पष्ट करने के लिए परिभाषा या व्याख्या पर समुचित ध्यान दिया जाना अपेक्षित है। ऐसे बहुत कम शब्द हैं जो इतने व्याख्यात्मक होते हैं कि उनका अर्थ अपने आप ही समझ में आ जाये। अधिकांश पारिभाषिक शब्दों को समझने के लिए हमें उनकी टीका या व्याख्या करने की जरूरत पड़ती है। शब्दों का एक वर्ग ऐसा भी है जो पारिभाषिक अर्थ में भी प्रयुक्त होता है और सामान्य अर्थों में भी।

पारिभाषिक शब्दों का एक ऐसा वर्ग भी है जिन्हें आम बोलचाल में हम पर्यायवाची मानकर चलते हैं। किंतु जब हम किसी विषय की गहराई में जाते हैं तो हम देखते हैं कि ऐसे शब्दों में सूक्ष्म-अर्थ भेद होता है। अंग्रेजी भाषा के एक विद्वान फॉउलर ने अपनी मशहूर पुस्तक "माडर्न इंग्लिश यूसेज" में इस तरह के अर्थ-भेद का अच्छा विवेचन किया है। अंग्रेजी के दो मिलते-जुलते अर्थों वाले शब्द हैं - "स्टीम और वेपर"। इसके लिए क्रमशः भाप और वाष्प शब्दों को निर्धारित कर दिया गया है।

पारिभाषिक शब्दावली का विकास :

हमारे देश में अंग्रेजों के आगमन के पूर्व आयुर्वेद, ज्योतिष तथा दर्शन आदि से संबंधित प्रचुर शब्दावली प्रचलन में थी। इसे देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भली प्रकार समझा जाता था। पिछली शताब्दी में जब पश्चिम के देशों में आधुनिक वैज्ञानिक विचारों और आविष्कारों का सूत्रपात हुआ तो वहां पारिभाषिक शब्दावली का तेजी से विकास हुआ। तब भारत में विद्वानों ने भी इस शब्दावली को भारतीय भाषाओं में रूपांतरित करने की आवश्यकता अनुभव की।

भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली पर चिंतन-मनन पिछली शताब्दी में ही प्रारंभ हो गया था। 1871 में बंगाल सरकार ने एक समिति नियुक्त की जिसका उद्देश्य भारतीय भाषाओं में उपयुक्त पुस्तकें तैयार करने के तरीकों पर विचार करना था। इस समिति के एक सदस्य राजेंद्र लाल मिश्रा ने भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करने के विषय पर एक निबंध प्रस्तुत किया जिसमें पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के संबंध में कई सिद्धांतों का विवेचन किया गया है।

1888 में गुजराती भाषा के क्षेत्र में प्रो. टी. के. गज्जर ने तकनीकी शब्दावली के निर्माण का कार्य प्रारंभ किया। हिंदी में वैज्ञानिक शब्दावली की परंपरा 1898 से शुरु हुई जब काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के हिंदी पर्याय बनाने के लिए एक समिति की स्थापना की। अनेक विद्वानों के सहयोग से 1906 में कई विषयों की शब्दावली प्रकाशित की गयी।

सभा के तत्वावधान में कुल मिलाकर लगभग 10,000 अंग्रेजी शब्दों के हिंदी पर्यायों का निर्माण किया गया। 1926 से 1950 की अवधि के बीच वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण के प्रति लोगों की रुचि में तेजी से वृद्धि हुई और कई उल्लेखनीय पारिभाषिक शब्द-संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें सुखसंपतराय भंडारी, पोपट लाल शाह, दाते-कर्बे तथा डॉ. रघुवीर के शब्द कोश उल्लेखनीय हैं।

पारिभाषिक शब्दावली के बारे में व्यक्तिगत प्रयासों में डॉ. रघुवीर का नाम बहुत ही महत्वपूर्ण है। 1948-49 में डॉ. रघुवीर द्वारा संपादित एक वृहत अंग्रेजी-हिंदी पारिभाषिक कोश प्रकाशित हुआ। इसके पहले इतने व्यापक स्तर पर शब्दावली संबंधी चिंतन नहीं हुआ था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में शब्दावली निर्माण के कार्य में तेजी आयी और कई प्रांतों में अपनी-अपनी भाषाओं में शब्दावली निर्माण करने का कार्य शुरू किया गया। हिंदी क्षेत्र में हिंदी साहित्य सम्मेलन तथा विज्ञान परिषद प्रयाग ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

तकनीकी शब्दावली आयोग :

भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के निर्माण के उद्देश्य को लेकर भारत सरकार ने 1950 में एक शब्दावली बोर्ड की स्थापना की और फिर 1961 में इसे वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का रुप दे दिया गया। आयोग ने आरंभ से ही ऐसी शब्दावली के निर्माण पर बल दिया जो थोड़े संशोधन के बाद हमारी विभिन्न भारतीय भाषाओं की प्रगति के अनुरुप ढाली जा सके और अखिल भारतीय स्तर पर व्यवहार में लायी जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त आयोग ने विभिन्न विषयों की शब्दावली को अंतिम रुप देने के लिए विशेष सलाहकार समितियों का गठन करते समय इस बात का ध्यान रखा कि इनमें देश के सभी क्षेत्रों के विषय विशेषज्ञों, अध्यापकों, शिक्षाविदों और भाषाविदों का प्रतिनिधित्व रहे। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के तत्वावधान में उपलब्ध शब्दावली की समीक्षा करने के बाद कुछ सिद्धांत निर्धारित किये गये जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं -

1) अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रुपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिये जा सकते हैं -
   - अ) तत्त्वों और यौगिकों के नाम, जैसे हाइड्रोजन, कार्बन, कार्बन डाईऑक्साइड आदि।
   - ब) तौल और माप की इकाइयां और भौतिक परिमाण की इकाइयां जैसे एंपियर, डाइन, कैलोरी आदि।
   - स) ऐसे शब्द जो युक्तियों के नाम पर बनाये गये हैं जैसे फारेन्हाइट, वोल्टामीटर और एंपियर आदि।
   - द) वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, भू-विज्ञान आदि की द्विपदी नामावली।
2) हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार विरोधी और विशुद्धिवादी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।
3) सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरुपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिये जो :
   - अ) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों।
   - ब) संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।
4) ऐसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग में वैज्ञानिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गये हैं। जैसे टेलीग्राफ / टेलीग्राम के लिए तार, एटम के लिए परमाणु आदि। ये सब इसी रुप में व्यवहार किये जाने चाहिए।

नयी शिक्षा नीति (1986) के व्यवहारिक कार्यक्रम के तहत विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा माध्यम परिवर्तन के संदर्भ में शब्दावली आयोग को अतिरिक्त जिम्मेदारी सौंपी गयी थी और इस दिशा में निम्नलिखित चार कार्यक्रमों

को निर्धारित किया गया है -

1) भारतीय भाषाओं में अब तक तैयार किये गये कार्य की तुलना में अब और बड़े पैमाने पर आधुनिक भारतीय भाषाओं में पाठ्य पुस्तक सामग्री, संदर्भ, ग्रंथों, संपूरक साहित्य का निर्माण और प्रकाशन ।
2) विश्वविद्यालयों के अध्यापकों का प्रशिक्षण तथा अभिविन्यास ।
3) अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में पाठ्य पुस्तकों, संदर्भ-ग्रंथों, तथा संपूरक साहित्य का अनुवाद और
4) इन शैक्षिक कार्यक्रमों का नियमित पुनरीक्षण तथा मॉनीटरन ।

आयोग द्वारा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से लेकर मानविकी और सामाजिक विज्ञानों के सभी विषयों से संबंधित 5 लाख से अधिक तकनीकी शब्दों का निर्माण कर उन्हें अलग-अलग विषय संबंधी शीर्षकों के अंतर्गत प्रकाशित कर दिया गया है ।

चूंकि विज्ञान की अपनी भाषा होती है । इस भाषा के माध्यम से वैज्ञानिक तथ्यों तथा गूढ़ रहस्यों को, विभिन्न तकनीकी शब्दों के सहारे व्यक्त करता है किंतु इसे ग्राह्य भाषा के रूप में रुपांतरित करने या अनुवाद करने में अनेक कठिनाइयां होती हैं । मूल भाषा से अनुवाद करने में सबसे बड़ी बाधा उस मूल भाषा की विशिष्ट शैली होती हे । उस शैली के सरलीकरण में तकनीकी शब्दों की भरमार के कारण अधिक वाक्य बनाने पड़ते हैं या नये शब्दों को गढ़कर उसके भाव को स्पष्ट करना होता है । ऐसे में कहीं-कहीं उपयुक्त शब्द न मिलने से कठिनाई होती है । अधिकांश वैज्ञानिक साहित्य अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध है । अंग्रेजी भाषा तथ्य प्रधान होती है । उन तथ्यों को यथावत दूसरी भाषा में प्रस्तुत करने में भाषा एवं शब्दावली का व्यापक उपयोग होता है ।

संस्कृत मूलक शब्दावली :

अधिकांश भारतीय भाषाओं की शब्दावली में संस्कृत शब्दों की प्रधानता है । प्राचीन काल में अपना देश आयुर्विज्ञान, ज्योतिष, दर्शन, काव्य शास्त्र, नाट्य शास्त्र, गणित आदि विषयों की दृष्टि से अग्रणी था । इसलिए संस्कृत भाषा में इन विषयों से संबंधित पर्याप्त शब्दावली उपलब्ध है । इन शास्त्रों से संबंधित ग्रंथ अनेक भारतीय भाषाओं में समय-समय पर लिखे गये और संस्कृतमूलक शब्दावली भी काफी हद तक अन्य भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होती रही है । यथा - "मिल्की वे" के लिए "आकाशगंगा", मार्स के लिए मंगल, "लंग" के लिए "फुफ्फुस"(फेफड़ा), किडनी के लिए वृक्क (गुर्दा) । ऑटम 'क्लाउड' के लिए अधिकांश भारतीय भाषाओं के बादल की जगह मेघ और ऑटम के लिए पतझड़ के स्थान पर शरद शब्द का प्रयोग होता है । इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि अखिल भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली पर विचार करते समय संस्कृतमूलक शब्दावली का सहारा लेना अनिवार्य हो जाता है । जो लोग संस्कृतनिष्ठ शब्दों पर आपत्ति करते हैं वे प्राय: इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं देते कि अंग्रेजी में हजारों शब्द लेटिन और ग्रीक भाषाओं से लिये गये हैं । विश्व की अनेक भाषाएं अपने शब्द भंडार के विकास के लिए क्लॉसिकल भाषाओं पर निर्भर रही हैं ।

शब्दावली पर टीका-टिप्पणी :

हमारी शब्दावली संबंधी बहस प्राय: पारिभाषिक शब्दों के सही-गलत या सरल-कठिन तक ही सीमित रह जाती है । हम शब्दावली को सही परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास नहीं करते और इस तरह व्यर्थ की उलझन में फंस जाते हैं ।

शब्दावली के बारे में एक और प्रकार से भी टीका-टिप्पणी होती है । कुछ लोग यह कहते हैं कि अमुक शब्द से वांछित अर्थ तो निकलता ही नहीं । शब्द और अर्थ की दृष्टि से तकनीकी शब्दों को दो मोटे वर्गों में रखा जा सकता है - पारदर्शी और अपारदर्शी । थर्मामीटर (तापमापी), टेलीविजन (दूरदर्शन), बायोग्राफी (जीवनी) आदि शब्द पारदर्शी हैं । अर्थात शब्द देखकर इनके तकनीकी अर्थ के बारे में कुछ अंदाजा लगाया जा सकता है । इसके विपरीत रेडियो, वोल्ट, सैंडविच, अमोनिया आदि शब्द अपारदर्शी कहे जायेंगे क्योंकि इनकी व्याख्या या परिभाषा देखे बिना इनके तकनीकी अर्थ के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता।

वैज्ञानिक शब्दावली की दृष्टि से विश्व के तीन महानतम वैज्ञानिकों - लावीजिए, माइकेल फैराडे और लिनियस ने दोनों प्रकार के शब्दों का निर्माण किया है। फ्रांसीसी रसायनज्ञ लावाजिए ने कई रासायनिक तत्त्वों और यौगिकों का नामकरण किया है। हाइड्रोजन, ऑक्सीजन आदि शब्द इस बात के प्रमाण हैं कि उन्होंने पारदर्शी शब्दों पर अधिक जोर देने का प्रयास किया है। उनका मत था कि किसी वैज्ञानिक संकल्पना के लिए ऐसे शब्द का प्रयोग किया जाय जिनसे संकल्पना के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी मिल सके। उन्होंने सार्थकता के साथ-साथ संक्षिप्तता पर भी यथोचित ध्यान दिया। इसके विपरीत ब्रिटिश वैज्ञानिक माइकेल फैराडे का विचार लावाजिए से कुछ भिन्न था। उनका मत था कि वैज्ञानिक शब्दों में अर्थ की स्पष्टता होने से कभी-कभी भ्रामक स्थिति उत्पन्न हो सकती है। शुरु-शुरु में किसी वैज्ञानिक खोज, नये पदार्थ या नये सिद्धांत के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं होती। उस समय उपलब्ध ज्ञान के आधार पर गढ़ा हुआ सार्थक शब्द बाद में भ्रामक या गलत सिद्ध हो सकता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया, जो या तो अर्थशून्य थे या उनसे पर्याप्त अर्थ-बोध नहीं होता था। एनोड, कैथोड, आयन, कैटायन, इलेक्ट्रोलाइट आदि शब्द फैराडे की ही देन हैं।

जीव विज्ञानी लिनियस ने पौधे तथा प्राणियों के नामों को व्यवस्थित रुप देने का प्रयास किया और जीव-विज्ञान की द्विपद नामावली को व्यापक आधार प्रदान किया। उनके द्वारा गढ़े हुए शब्दों में उपर्युक्त दोनों विचारों का अच्छा समन्वय देखने को मिलता है। उनके कुछ शब्द ऐसे हैं जो लावाजिए की तरह अर्थ की दृष्टि से स्वतः स्पष्ट हैं। जैसे, डिप्टेरा, लेपीडोप्टेरा, राइनोसेरस आदि। लेकिन प्राइमेट्स जैसे कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो अर्थ की दृष्टि से इतने सुस्पष्ट नहीं हैं। अर्थ के अलावा वैज्ञानिक शब्द में और भी कई गुण अपेक्षित हैं। एक तो संक्षिप्तता, दूसरा यह कि ऐसे शब्दों को प्रधानता दी जानी चाहिए जिनसे आवश्यकता पड़ने पर व्युत्पन्न शब्द गढ़े जा सकें। इस दृष्टि से अंग्रेजी के विटामिन और ऑक्सीजन शब्द सही न होते हुए भी उपयोगी हैं। तीसरी यह बात भी महत्वपूर्ण है कि वैज्ञानिक शब्दों में विकसित होने की क्षमता होनी चाहिए। अर्थात ज्ञान विज्ञान के विकास के साथ-साथ शब्दों में नये विचारों को समाविष्ट करने की क्षमता भी होनी चाहिए।

विज्ञान विषयों में एक अनुमान के अनुसार 20 प्रतिशत शब्दावली अंतर्राष्ट्रीय है, 70 प्रतिशत अखिल भारतीय प्रकृति की है और 10 प्रतिशत क्षेत्रीय है। मानविकी और समाज विज्ञानों में अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली का प्रतिशत काफी कम है। प्रायः पदार्थों के नामों का स्वरुप अंतर्राष्ट्रीय है। सभी रसायन यौगिकों के नाम जिस रुप में अंग्रेजी में प्रयुक्त होते हैं, उसी रुप में हिंदी में भी अपना लिये गये हैं यथा कार्बन डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन परऑक्साइड आदि। सोना, चांदी, तांबा आदि जैसे सर्व विदित सामान्य तत्त्वों के नामों को छोड़कर जो पहले से ही हमारी भाषाओं में प्रचलित हैं, अधिकांश रासायनिक तत्त्वों के नामों को, उनके अंतर्राष्ट्रीय रुप में अपना लिया गया है। भौतिकी में स्थिति अपेक्षाकृत भिन्न है, क्योंकि इसमें पदार्थों की अपेक्षा संकल्पनाओं का विवेचन किया जाता है। हीट (Heat), लाईट (Light), साउंड (Sound), इलेक्ट्रिसिटी (Electricity), जैसी सामान्य संकल्पनाओं का अनुवाद क्रमशः ऊष्मा, प्रकाश, ध्वनि तथा विद्युत शब्दों के रुप में किया गया है। जीव-विज्ञानों (Life Sciences or Biological Sciences) के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत द्विपदी नाम पर पद्धति को वैसा ही ले लिया गया है।

हमारे प्राचीन ग्रंथों में जिस पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया गया था वह संस्कृत मूलक थी और कालांतर में भारत की विभिन्न भाषाओं ने इन शब्दों को ग्रहण कर लिया था। इसमें संदेह नहीं कि आज उनमें से कुछ शब्दों का अर्थ अलग-अलग भाषाई क्षेत्रों में एक दूसरे से भिन्न हो गया है और साथ ही, दक्षिण भारतीय भाषाओं की शब्दावली एक अंश तक संस्कृत मूलक नहीं है। फिर भी इस देश में संस्कृत ही एक मात्र ऐसी भाषा है जिसने सभी भारतीय भाषाओं के विकास में योगदान किया है और उनके शब्द-भंडारों में संस्कृत मूल के अनेक शब्द विद्यमान हैं। एकता के इसी सूत्र को पकड़ कर शब्दावली आयोग ने नये शब्दों का निर्माण किया है। यही निर्देश हमारे संविधान का भी है।

प्रशासनिक क्षेत्र में अरबी-फारसी मूल के अनेक शब्द मुगलों के शासनकाल से प्रयोग में आने लगे थे और कालांतर में इन्हें सारे देश में समझा जाने लगा था । ये शब्द अब वस्तुत: सभी भारतीय भाषाओं के शब्द भंडारों में पाये जाते हैं और शब्दावली आयोग ने इन्हें अखिल भारतीय मान कर ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है ।

उद्योग-व्यापार के क्षेत्र में मारवाड़ियों ने अपनी भाषा के अनेक शब्द भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रचलित किये हैं । आयोग ने ऐसे सभी शब्दों को भी अखिल भारतीय माना है और अपनी शब्दावली में स्थान दिया है ।

अखिल भारतीय शब्दावली विकसित करने के कार्य को अब शब्दावली आयोग विशेष महत्त्व दे रहा है । कारण यह है कि प्राय: सभी विश्वविद्यालय कम से कम स्नातक स्तर तक विभिन्न विषयों की पढ़ाई और परीक्षाएं क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से कर रहे हैं । इसके साथ ही राज्य सरकार प्रशासन में क्षेत्रीय भाषाओं के उत्तरोत्तर प्रयोग पर बल दे रही है । ऐसी स्थिति में यह बहुत आवश्यक है कि विभिन्न विषयों की कम से कम मूलभूत शब्दावली यथासंभव देश की सभी भाषाओं में एक समान हो । तभी देश के एक भाषाई क्षेत्र से पढ़कर आया हुआ छात्र अन्य भाषाई क्षेत्र में अध्यापन अथवा सेवा कर सकेगा ।

पारिभाषिक शब्दावली का एक घटक क्षेत्रीय स्तर की शब्दावली भी है । ये वे शब्द हैं जिन्हें छोटे-छोटे कारीगर और मिस्त्री अपने दैनंदिन व्यवहार में लाते हैं अथवा जो स्कूली पाठ्य पुस्तकों में व्यवहृत होते हैं ।

सामान्य जनता भी इन शब्दों को प्राय: प्रयोग में लाती है । हिंदी में लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई आदि शब्द इसी कोटि के हैं । इन शब्दों के लिए अखिल भारतीय पर्याय निर्धारित नहीं किये जा सकते । अत: शब्दावली आयोग ने इसके लिए सभी भारतीय भाषाओं को अपने-अपने शब्दों के प्रयोग को जारी रखने की छूट दी है । आयोग द्वारा अब तक प्रकाशित शब्द संग्रहों में ऐसे शब्दों के हिंद क्षेत्र में प्रचलित पर्याय दे दिये गये हैं । और हिंदीतर भाषाओं को उनके स्थान पर अपने शब्दों का व्यवहार करने की स्वतंत्रता है । वैसे इस प्रकार के शब्द संपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं हैं ।

तकनीकी शब्दों का निर्माण एक अनवरत प्रक्रिया है । ज्ञान की विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं का उदय होता रहता है और उनके लिए नये-नये शब्द भी गढ़ जाते हैं । दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए ज्ञान से लाभान्वित होने के लिए हमें समानकों का निर्माण निरंतर करते रहना होगा ।

नि:संदेह, विज्ञान के क्षेत्र में देश का बहुमुखी विकास तभी संभव है जब विज्ञान के गूढ़ विषयों से संबंधित साहित्य सरल एवं सुबोध भाषा में उपलब्ध हो । वैज्ञानिक विषय जटिल होते हैं । किसी जटिल विषय को समझने के लिए सबसे उपयुक्त भाषा मातृभाषा होती है ।

यंत्र पहेलियां

दुबली-पतली शक्ल हमारी,
भरा उदर में पारा । - *थर्मामीटर*

सुनाऊं दिल की धड़कन मगर,
कान नहीं हूं ।
लटका रहता हूं गले में मगर,
हार नहीं हूं । - *स्टेथेस्कोप*

पानी के अंदर चलती हूं,
आती हूं युद्ध में काम । - *पनडुब्बी*

भारी-भरकम काया मेरी,
धीरे-धीरे चलता हूं ।
गिट्टी-मिट्टी मुरम दबाकर,
सड़क बनाया करता हूं ।।
चलता-फिरता देखकर मुझको,
समझ न लेना गाड़ी ।
जो मेरा नाम न जानें समझो उन्हें अनाड़ी ।।
- *रोलर*

उदर में निष्क्रिय गैस,
घड़े जैसा मेरा आकार ।
एडीसन ने जब मुझे खोजा,
जगमगाया सारा संसार ।। - *बल्ब*

कु. कंचन सिंह
क्वार्टर नं. - L/11/E जटेपुर रेल्वे कालोनी
गोरखपुर (उ. प्र.) - 273 012.

विज्ञान कहानी

मेरी कहानी, मेरी जुबानी - एक उपग्रह

काली शंकर
डी- 6, मल्टी स्टोरी फ्लैट्स,
पंडारा पार्क, नयी दिल्ली - 110 003.

मेरा नाम उपग्रह है। अंग्रेजी में मुझे सैटेलाइट के नाम से जाना जाता है। आज दुनिया वालों को मैं अपनी कहानी स्वयं सुनाने आया हूँ। दुनिया वालों के अनुसार जब कोई छोटी चीज एक विशालकाय पिंड के चारों ओर घूमती है तो उसे उपग्रह कहा जाता है। चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है इसलिए उसे पृथ्वी का उपग्रह कहते हैं, लेकिन मुझमें और चंद्रमा में एक बहुत बड़ा अंतर है। चंद्रमा का निर्माण प्रकृति ने स्वयं किया है इसलिए उसे प्राकृतिक उपग्रह कहते हैं, लेकिन मेरा निर्माण मनुष्य ने किया है इसलिए मुझे कृत्रिम (आर्टिफिसियल) उपग्रह कहते है। इस प्रकार आप लोगों को यह स्पष्ट हो गया होगा कि मैं मानव निर्मित उपग्रह हूँ। पर मैं अपनी दास्तान में अपने को कृत्रिम उपग्रह के बजाय सिर्फ उपग्रह के नाम से ही संबोधित करूँगा।

मेरी वशांवली :

मेरा वंश और उसका इतिहास बहुत पुराना है तथा विशाल भी है। मेरे सबसे बड़े पूज्यनीय पितामह स्पुतनिक-1 थे जिन्हें तत्कालीन सोवियत संघ ने 5 अक्टूबर 1957 को अंतरिक्ष में भेजा था। उसके बाद तो मनुष्य हमारा निर्माण करता ही चला गया। मैंने मानव के लिए अपने को बहुत उपयोगी सिद्ध किया है इसीलिए वैज्ञानिक जगत और खासकर के संचार के क्षेत्र में मेरा बहुत नाम है। मेरी विशाल वंशावली में मेरे 6 भाई हैं तथा हर एक भाई का विशाल परिवार है। मेरे सबसे बड़े भाई का नाम संचार उपग्रह है। उन्होंने दुनिया में बहुत नाम कमाया है। ये अपने तीन परिवार जनों के साथ मिलकर सारी दुनिया में संचार व्यवस्था स्थापित कर सकते है। इन्हें पृथ्वी से 36,000 किमी. की दूरी पर स्थापित किया जाता है। इस कक्षा को भू-समकालिक कक्षा कहते हैं। ट्रान्सपान्डर संचार उपग्रहों का मुख्य अंग कहलाता है। इसे संचार उपग्रह का हृदय भी कहते हैं। एक संचार उपग्रह के द्वारा एक साथ अनेकों टेलीविजन तथा हजारों टेलीफोन चैनेलों का प्रेक्षण एवं अभिग्रहण संभव है। इन्सैट श्रृंखला के सारे उपग्रह संचार उपग्रह हैं (चित्र - 1 एवं 2)।

मौसम विज्ञानी उपग्रह :

हमारे दूसरे भाई का नाम मौसम विज्ञानी उपग्रह है। बड़े भाई संचार उपग्रह के साथ साथ मौसम विज्ञानी उपग्रहों का भी विकास किया गया जिससे पृथ्वी के एक स्थान से विभिन्न क्षेत्रों का अवलोकन किया जा सके। पिछले काफी वर्षों से हमारे मौसम विज्ञानी उपग्रह भाइयों ने अंतरिक्ष से पृथ्वी के वायुमंडल के मौसम के विषय में अभूतपूर्व जानकारी मानव को उपलब्ध करायी है। पृथ्वी के मौसम के विषय में हमारे ये भाई सदा सचेत रहते हैं। समकालिक कक्षा और ध्रुवीय कक्षा के उपग्रह मौसम के पूर्वानुमान के लिए बड़े उपयोगी पाये गये हैं। अंतरिक्ष युग के आविर्भाव के पहले वैज्ञानिकों ने यह अनुमान लगाया कि पृथ्वी के मौसम की जानकारी प्राप्त करने के लिए अंतरिक्ष एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

मौसम विज्ञानी उपग्रह बादलों के फोटो चित्र लेकर भू-स्थित केंद्रों को भेजते रहते हैं। इनके आधार पर मौसम का विश्लेषण किया जाता है तथा मौसम की भविष्यवाणी की जाती है। टाइरस-1 उपग्रह विश्व का पहला मौसम विज्ञानी उपग्रह था। टाइरस-1 के बाद अनेक मौसम विज्ञानी उपग्रह अंतरिक्ष में भेजे गये। ये उपग्रह 300 से 600 किमी. की दूरी पर स्थापित किये गये। एक अन्य मौसम विज्ञानी उपग्रह का नाम "नोआ"

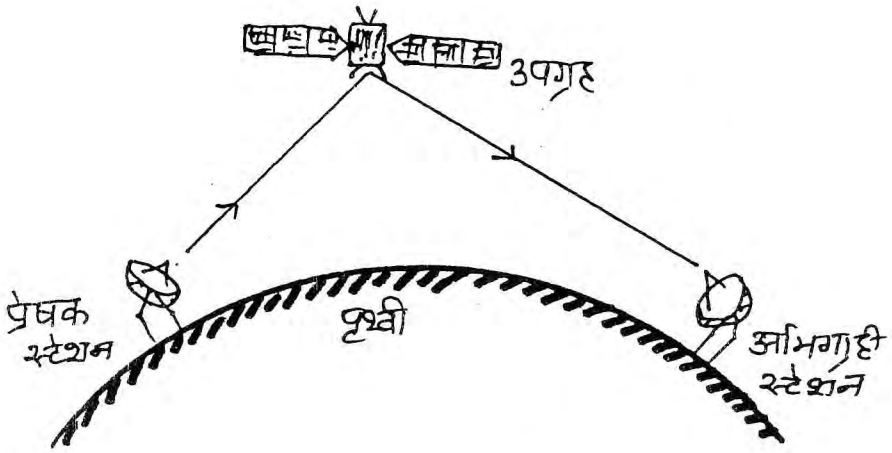

चित्र-1 : उपग्रह संचार प्रणाली

है । इस श्रृंखला के मौसम विज्ञानी उपग्रह अमरीकी मौसम विज्ञानी सेवा के अंतर्गत कार्य करते हैं ।

पहले हमारे ये भाई पृथ्वी से नजदीक की कक्षा में स्थापित किये जाते थे लेकिन बाद में समकालिक कक्षा में भी मौसम विज्ञानी उपग्रह स्थापित किये जाने लगे । यह कार्य 1974 से प्रारंभ किया गया । इसके अंतर्गत विश्व मॉनीटरन (वर्ल्ड वैदर वाच) संस्था की स्थापना की गयी । इस कार्य में अमरीकी मौसम विज्ञानी उपग्रह जी ओ एस (2 संख्या), मीटियो सैट उपग्रह (योरपीय अंतरिक्ष संस्था का) और जापान जी एम एस भाग ले रहे हैं (चित्र-3) ।

तीसरा भाई - सुदूर संवेदन उपग्रह :

सुदूर संवेदन तकनीक का अर्थ है किसी ऊँचे प्लेटफॉर्म से संवेदकों (सेन्सरों) के द्वारा पृथ्वी में छिपी संपदा की उपलब्धता तथा उसके गुणों के विषय में पता करना । यह काम हमारे भ्राता सुदूर संवेदन उपग्रह बड़ी बखूबी से कर लेते हैं । ये अंतरिक्ष में पृथ्वी से 800-900 किमी. दूरी पर रहते हुए पृथ्वी के विषय में अनेक प्रकार की सूचनाएं; जैसे कृषि, वन्यशास्त्र, पृथ्वी की हरीतिमा मृदा संबंधी इत्यादि, के विषय में जानकारी देते हैं । ये भू-गर्भ संबंधी और जल संबंधी सूचना भी देते हैं । हमारे ये भ्राता कृषि क्षेत्र के लिए अत्यधिक उपयोगी हैं । किसी भी देश की खुशहाली में कृषि उत्पादन का बड़ा महत्व होता है । कृषि के क्षेत्र में आयी किसी प्रकार की दैविक या भौतिक समस्या, खाद्य संकट को जन्म देती हैं । कृषि उत्पादन के बढ़ाव-घटाव में वर्षा की प्रमुख भूमिका के साथ फसलों में लगने वाली बीमारियों की भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण है । कृषि के क्षेत्र में भावी कृषि उत्पादन से संबंधित किसी प्रकार के निर्णय लेने में कृषि संबंधी विभिन्न स्रोतों की सामयिक सूचना का बड़ा महत्व है । सुदूर संवेदन उपग्रह किसी विशाल क्षेत्र में लगी हुई फसलों के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान कर सकते हैं । ये भ्राता जी अंतरिक्ष में बैठे हुए यह भी बताने में सक्षम हैं कि अमुक जगह पर फसल कैसी है, फसल स्वस्थ है या कोई बीमारी लगी हुई है । इस प्रकार की सूचनाओं के आधार पर फसलों को भावी क्षति से बचाने के लिए समुचित तरीके अपनाये जा सकते हैं ।

हमारे सुदूर संवेदन भ्राता अपने अंदर लगे हुए संवेदकों की मदद से निम्न सूचनाएं प्रदान करते हैं :

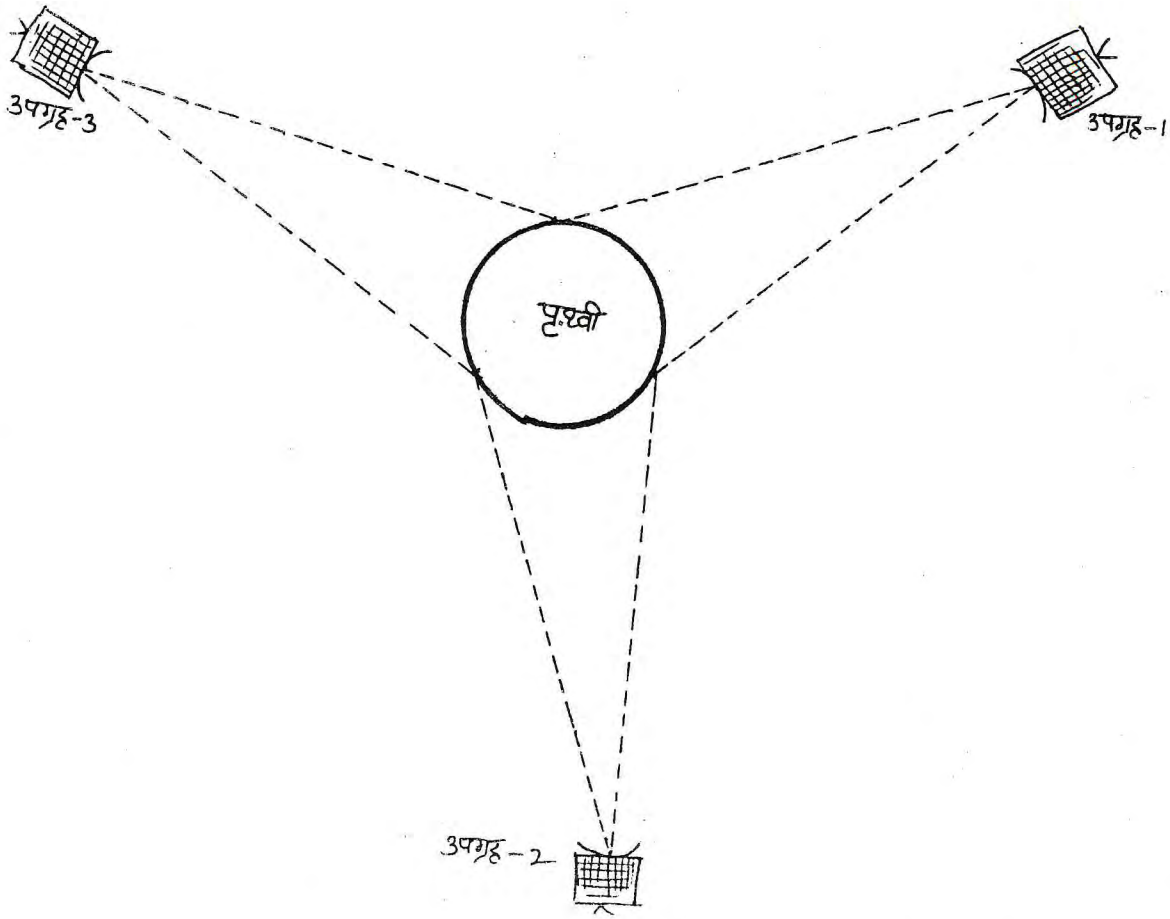

चित्र-2 : तीन संचार उपग्रह भाई पृथ्वी से 36000 किमी. की दूरी पर स्थित होकर संपूर्ण विश्व में संचार व्यवस्था स्थापित कर सकते हैं ।

(क) कृषि, वन्यशास्त्र, पृथ्वी की हरीतिमा

(ख) मृदा संबंधी सूचना - कृषि योग्य मृदा, लवण अपरदित (साल्ट एरोडेड), निर्जल, रेगिस्तानी, नमीयुक्त, मटियार

(ग) भू-गर्भ संबंधी सूचना - खनिज पदार्थों की उपलब्धि ।

(घ) जल संबंधी सूचना - जल सतहों तथा उप-सतहों संबंधी सूचना ।

चौथा भाई नौ - संचालन उपग्रह :

हमारे ये भाई बड़े-बड़े करिश्में कर दिखलाते हैं । सारा विश्व आज इनके उपयोगों का कायल है । ये अकेले काम नहीं करते बल्कि अपने परिजनों के साथ झुंड में पृथ्वी का चक्कर लगाते हुए मानव के कल्याण के कार्य करते हैं । अंतरिक्ष में रहते हुए ये बता सकते हैं कि पृथ्वी के किसी स्थान का अक्षांश, देशांतर और उस स्थान की समुद्र से उँचाई क्या है । किसी स्थान की स्थिति के ये

आंकड़े आज बहुत महत्वपूर्ण हो गये हैं। विश्व के परिवहन के क्षेत्र में और विशेषकर हवाई परिवहन के क्षेत्र में हुए महान विस्तार ने नौ-संचालन को और भी अधिक उच्चकोटि का बना दिया है। उदाहरणार्थ, पेट्रोल और ईंधन की बढ़ती कीमतों ने नौ-संचालन के और भी विकसित तरीकों पर बल दिया है। ईंधन की बढ़ती कीमतें इस बात पर जोर देती हैं कि उच्चतम ट्रैफिक के क्षणों में भी हवाई जहाज ऐसे मार्गों का अनुसरण करें जो दूरी की दृष्टि से सबसे कम दूरी वाला हो। इसी प्रकार पानी के जहाजों के लिए भी आवश्यक है कि किसी स्थान तक पहुंचने के लिए कम दूरी के मार्ग का अनुसरण करें। इस सबके के लिए यह आवश्यक है कि किसी ऐसे तंत्र का विकास किया जाये जो किसी स्थान की भौगोलिक स्थिति को पूर्ण रूप से तथा काफी शुद्धता से परिभाषित कर सके।

पहले नौ-संचालन के लिए मनुष्य प्राकृतिक ब्रह्मांडीय पिंडों जैसे नक्षत्र, तारे इत्यादि का सहारा लेता था। लेकिन कई बार वर्षा की ऋतु में या बदली के मौसम में ये नक्षत्र नहीं दिखाई देते थे। इन परिस्थितियों से निपटने के लिए मनुष्य ने प्राकृतिक संदर्भ (रेफरेन्स) से हटकर, कृत्रिम उपग्रहों का प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया है। भौगोलिक स्थिति का पता करने के लिए पहली बार 'ट्रान्जिट' नाम के कृत्रिम उपग्रह का प्रयोग किया गया। आज मनुष्य विश्व स्थिति निर्धारण तंत्र (ग्लोबल पोजीशनिंग सिस्टम) का प्रयोग, पृथ्वी में किसी बिंदु की स्थिति का सही निर्धारण करने लिए कर रहा है। इसको संक्षिप्त में जी. पी. एस. तंत्र कहते हैं। इस तंत्र के हमारे 24 भाई (नेविगेशन उपग्रह) 10,800 नॉटिकल मील की दूरी पर पृथ्वी का चक्कर लगाते हैं और ये 6 निर्धारित प्लेनों में बंटे रहते हैं। प्रत्येक उपग्रह दिन में दो बार पृथ्वी का चक्कर लगाता है। इन उपग्रहों का सबसे जटिल अवयव इनमें लगे हुए परमाण्वीय दोलित्र हैं जिनमें रूबीडियम के सेल तथा सीजीयम किरण मानक शामिल हैं। जीपीएस के द्वारा भौगोलिक स्थिति का जिस शुद्धता से पता किया जाता है उसका श्रेय इन्हीं दोलित्रों को जाता है। इन दोलित्रों की आवृत्ति में एक लाख वर्षों में केवल एक सेकंड की त्रुटि हो सकती है। (चित्र-4)

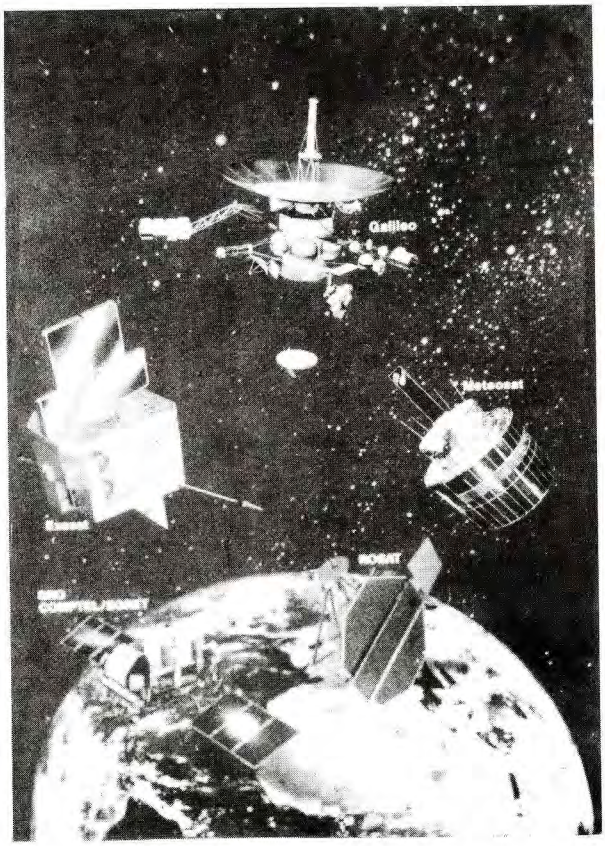

चित्र-3 : अंतरिक्ष की कक्षा में मौसम विज्ञानी उपग्रह 'मीटिफेसैट'

पांचवां भाई - 'खोज एवं बचाव सेवा उपग्रह' :

मेरे ये भाई मानव के लिए बड़े परोपकार के कार्य करते हैं। इनकी खास विशेषता यह है कि दुनिया में घटित होने वाली किसी दुर्घटना के विषय में ये जानकारी तुरंत दे सकते हैं और बता सकते हैं कि वह दुर्घटना पृथ्वी में किस स्थान (अक्षांश और देशांतर के साथ) पर हुई। सूचना के आधार पर बचाव एवं सुरक्षा संस्थाएँ घटना स्थल पर पहुँच जाती हैं। मनुष्य ने खोज एवं बचाव कार्य के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक कार्यक्रम बनाया है जो अच्छी तरह से कार्य कर रहा है। इस अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम का नाम "कोस्पास-सारसैट" है। 'कोस्पास' और 'सारसैट' दो अलग अलग प्रकार के उपग्रहों के नाम हैं। इनमें से

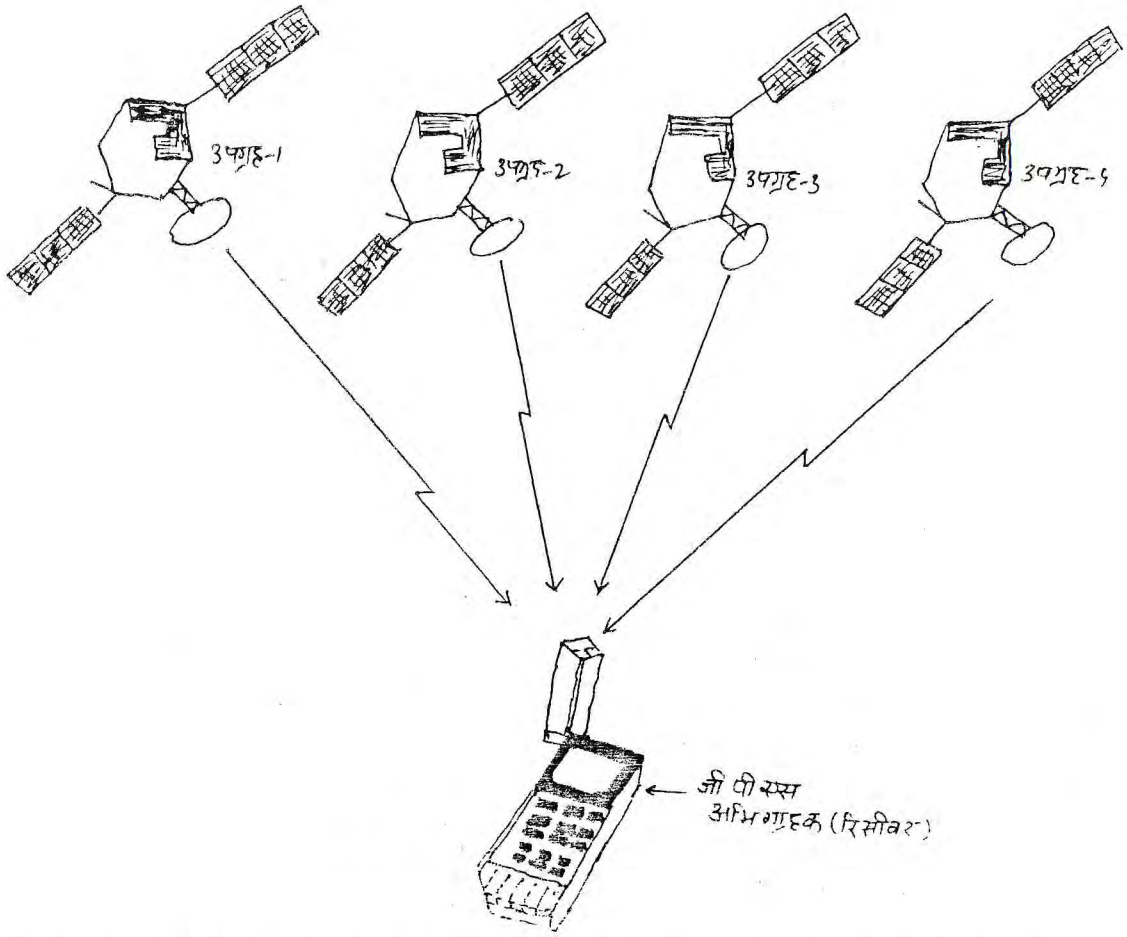

चित्र - 4 : जी पी एस (ग्लोबल पोजीशनिंग सिस्टम) तंत्र । तंत्र में 24 उपग्रहों का प्रयोग । प्रत्येक उपग्रह पृथ्वी से 10800 नाटिकल मील की दूरी पर ।

प्रत्येक श्रेणी के दो दो उपग्रह पृथ्वी की निम्न कक्षा में स्थापित किये गये हैं । सारसैट उपग्रह 850 किमी. ध्रुवीय कक्षा में तथा कोस्पास उपग्रह 1000 किमी. की ध्रुवीय कक्षा में स्थापित किये गये हैं ।

खोज एवं बचाव सेवा तंत्र चित्र-5 में दिखाया गया है । इस सेवा का उपयोग कुछ विशेष परिस्थितियों में बड़ा उपयोगी है जैसे, सुदूर क्षेत्रों में दुर्घटनाग्रस्त हवाई जहाज अथवा समुद्र में दुर्घटनाग्रस्त पानी का जहाज अथवा किसी अन्य प्रकार की विषम परिस्थिति जैसे बाढ़ इत्यादि में फँसे हुए लोग इत्यादि ।

मेरे सबसे छोटे भैय्या वैज्ञानिक उपग्रह :

मेरे ये भैय्या छोटे आकार के होते हैं तथा इनका जीवन काल अल्प होता है और ये साधारण जीवन जीते हैं । मनुष्य मेरे इन छोटे भाइयों का उपयोग विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक परीक्षणों और वायुमंडल के अध्ययनों के लिए करता है । भारत का आर्यभट्ट उपग्रह एक वैज्ञानिक उपग्रह था ।

हमारे भेद :

हमें दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है - निष्क्रिय उपग्रह तथा सक्रिय उपग्रह । हमारे निष्क्रिय

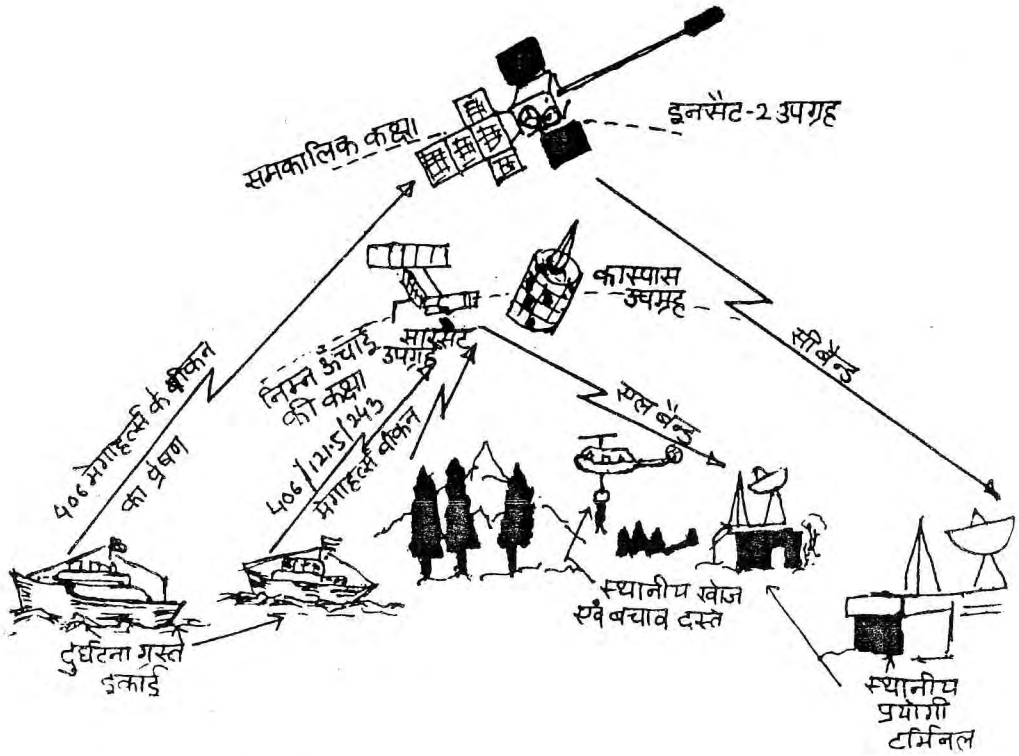

चित्र-5 : उपग्रह आधारित खोज एवं बचाव सेवा

उपग्रह भाइयों में किसी तरह के उपकरण नहीं होते तथा इसीलिए इनमें किसी प्रकार की विद्युत ऊर्जा की आवश्यकता नहीं होती । मेरे इन भाइयों का जीवन काल लंबा होता है । ये केवल एक परावर्तक की भांति कार्य करते हैं । ये केवल पृथ्वी से भेजे गये सिग्नलों का परावर्तन कर देते हैं जिसे पृथ्वी के भू-केंद्र अभिग्रहित करते हैं । निष्क्रिय उपग्रह का सबसे बड़ा दोष यह है कि इनके प्रयोग में शक्तिशाली भू-केंद्र ट्रान्समीटर की आवश्यकता होती है । निष्क्रिय उपग्रह में प्रेषित ऊर्जा का काफी ह्रास होता है । इको-1 विश्व का पहला निष्क्रिय उपग्रह था । वैसे निष्क्रिय उपग्रहों का प्रयोग न के बराबर ही हुआ है ।

हमारी दूसरी श्रेणी का नाम है सक्रिय उपग्रह । आज के सारे उपग्रह केवल सक्रिय उपग्रह हैं । सक्रिय उपग्रह के अंदर उपकरण लगे होते हैं जिन्हें विद्युत ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है । स्कोर-1 विश्व का पहला सक्रिय उपग्रह था । इन्टेलसैट संस्था के सारे उपग्रह भी सक्रिय उपग्रह हैं । इसी प्रकार इन्सैट श्रृंखला के सारे उपग्रह सक्रिय उपग्रह हैं ।

अंतरिक्ष में हमारा भ्रमण पथ :

अंतरिक्ष में हम पृथ्वी के चारों ओर विभिन्न मार्गों का चक्कर लगाते हैं । हमारे घूमने के मार्गों को कक्षा या अंग्रेजी में "ऑरबिट" कहते हैं । हमारे संचार भाई अधिकांश रूप से पृथ्वी की समकालिक कक्षा में स्थापित किये जाते हैं । यह कक्षा पृथ्वी से 3600 किमी. की दूरी पर वृत्ताकार रूप में होती है । साथ ही साथ यह कक्षा पृथ्वी की भू-मध्यरेखा के समानांतर होती है । हमारे सुदूर संवेदन भाई पृथ्वी की ध्रुवीय कक्षा में स्थापित किये जाते हैं । हमारे कुछ संचार उपग्रह भाई दीर्घवृत्तीय कक्षा में भी स्थापित किये जाते हैं । यह एक अंडाकार कक्षा होती है (चित्र-6) । दीर्घवृत्तीय कक्षा का उपयोग कुछ खास

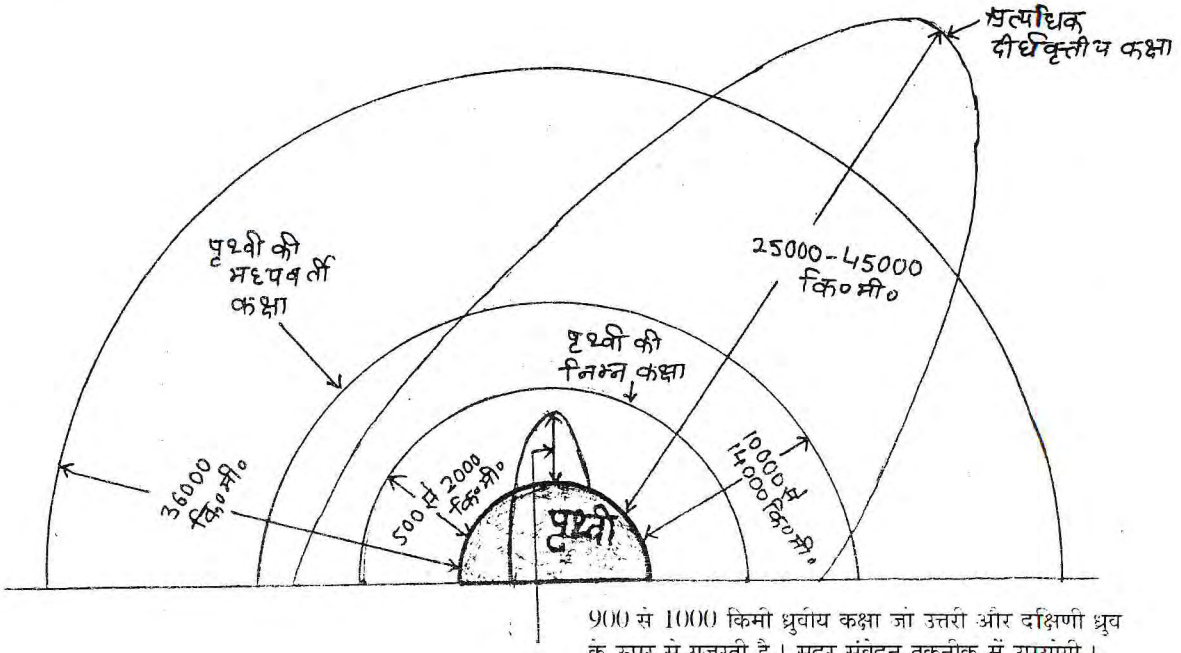

900 से 1000 किमी ध्रुवीय कक्षा जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव के ऊपर से गुजरती है। सुदूर संवेदन तकनीक में उपयोगी।

चित्र-6 : अंतरिक्ष में हमारे भ्रमण मार्गों को कक्षा या अंग्रेजी में 'आरबिट' कहते हैं। हम अंतरिक्ष में 5 प्रकार की कक्षाओं में पृथ्वी का चक्कर लगाते हैं जैसा कि इस चित्र में दिखाया गया है।

परिस्थितियों में किया जाता है। यह कक्षा उन देशों के लिए उपयोगी होती है जो भू-मध्यरेखा से काफी दूर तथा (उत्तर ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव) से नजदीक होते हैं अथवा जिनका विस्तार भू-मध्यरेखा से दूर ध्रुव तक होता है। दीर्घवृत्तीय कक्षा का उपयोग रूस करता है। अन्य देश समकालिक कक्षा में अपने संचार उपग्रह स्थापित करते हैं। समकालिक कक्षा मनुष्य ने बहुत सोच समझकर चुनी है। हम जानते हैं कि हमारी पृथ्वी अपनी धुरी पर 24 घंटे में एक चक्कर लगाती है। इस कक्षा में रहते हुए हम भी पृथ्वी का एक चक्कर इतने ही समय में लगाते हैं। फल यह होता है कि अगर हमें एक बार पृथ्वी के किसी भू-केंद्र की ओर उन्मुख कर दिया जाये तो हम लगातार उसी दिशा में उन्मुख बने रहते हैं। इस प्रकार बारबार भू-केंद्र के एन्टेना को घुमाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हमारे अन्य भाई नौ-संचालन उपग्रह, वैज्ञानिक उपग्रह, तथा खोज एवं बचाव उपग्रह पृथ्वी के काफी नजदीक स्थापित किये जाते हैं।

मनुष्य की व्यक्तिगत संचार की बढ़ती आवश्यकता :

मनुष्य की व्यक्तिगत संचार की आवश्यकता इतनी बढ़ गयी है कि उसने आर्थर क्लार्क (जो संचार उपग्रहों के जन्म दाता हैं) की संकल्पना में भी परिवर्तन कर दिया है। ऑर्थर क्लार्क की संकल्पना के अनुसार पृथ्वी की समकालिक कक्षा (पृथ्वी से 3600 किमी. की दूरी पर) में स्थित तीन उपग्रह संपूर्ण पृथ्वी संचार व्यवस्था स्थापित कर सकते हैं। मनुष्य के अनुसार व्यक्तिगत संचार का मतलब वह संचार है जो सस्ते रूप में साधारण उपकरणों के द्वारा संपन्न किया जा सके तथा उपभोक्ता इसे एक छोटे से टेलीफोन (हैन्डहेल्ड टेलीफोन) के द्वारा संपन्न कर सकें। इस व्यक्तिगत संचार को मनुष्य ने ग्लोबल रुप में स्थापित किया है। व्यक्तिगत संचार के लिए मनुष्य ने अब हमारे संचार भाइयों को पृथ्वी से 3600 किमी. की दूरी के बजाय अत्यधिक नजदीक स्थापित करना प्रांरभ कर दिया है। इससे एक फायदा हुआ है कि कम दूरी के कारण सिग्नल ह्रास कम हो गया है तथा लिंक डिजाईन

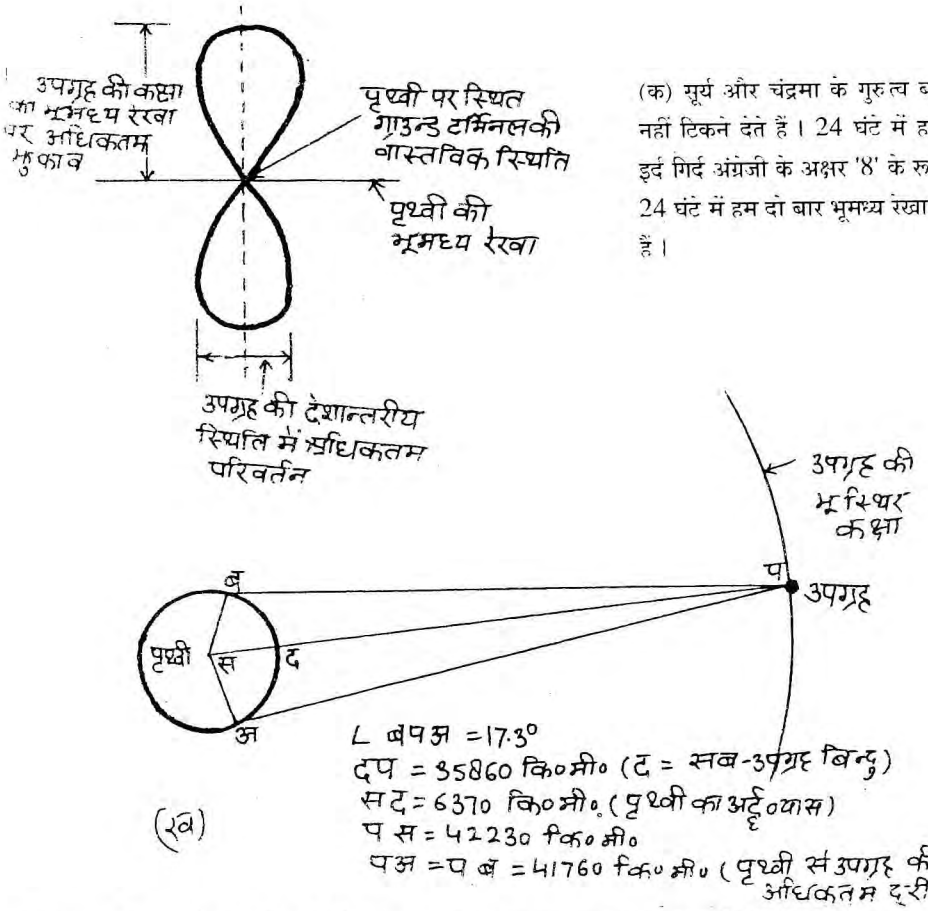

(क) सूर्य और चंद्रमा के गुरुत्व बल हमें एक जगह नहीं टिकने देते हैं। 24 घंटे में हम भूमध्य रेखा के इर्द गिर्द अंग्रेजी के अक्षर '8' के रूप में घूमते हैं तथा 24 घंटे में हम दो बार भूमध्य रेखा के ऊपर से गुजरते हैं।

चित्र - 7 : इन दूरियों को देखकर आप अनुमान लगा सकते हैं कि संचार उपग्रह पृथ्वी से कितनी दूर हैं।

के लिए काफी अच्छा मार्जिन मिल गया है। इसके कारण उपभोक्ता टर्मिनल का आकार छोटा हो गया है।

अंतरिक्ष में हमारी समस्याएँ :

अंतरिक्ष में रहते हुए मुझे अनेक परेशानियों से निपटना पड़ता है तथा अंतरिक्ष में अपनी स्थिति का ध्यान भी रखना पड़ता है। अगर मैं अपनी स्थिति से हट जाऊँ तो इसका असर संचार व्यवस्था पर पड़ सकता है। अंतरिक्ष में अनेक बाह्य ताकतें हैं जो लगातार मुझे परेशान करती हैं तथा इसके कारण मैं मनुष्य के द्वारा निर्धारित स्थिति से थोड़ा बहुत हट जाता हूँ जिसका संशोधन मानव पृथ्वी में स्थित नियंत्रण केंद्रों से करता रहता है। इसमें हमारे अंदर डाले गये ईंधन में कमी हो जाती है जो हमारे जीवन काल को प्रभावित करती है। मुझे परेशान करने वाले प्राकृतिक कारक हैं -गुरुत्व प्रवणता, पृथ्वी की चुंबकीय शक्ति, सूर्य और चंद्रमा के गुरुत्व खिंचाव, सौर विकिरण दाब इत्यादि। इस प्रकार इस बात का अंदाज लगाया जा सकता है, कि मुझे कितनी प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा प्रभावित होना पड़ता है। मुझे अपनी निर्धारित जगह में बनाये रखने के लिए मनुष्य ने विशेष प्रकार का इंतजाम कर रखा है। उसने मेरे शरीर में चारों ओर प्रणोदक (थ्रस्टर) लगा रखे हैं। पृथ्वी से

दूरदेशी (टेली कमान्ड) के माध्यम से तथा इन प्रणोदकों की सहायता से वह मुझे हर समय मेरी निर्धारित जगह पर बनाये रखता है ।

जब अपनी कक्षा में हम ड्रिफ्ट करते हैं तो यह देशांतरीय त्रुटि को जन्म देता है अर्थात अंतरिक्ष में हमारी देशांतरीय स्थिति परिवर्तित होती है और इस परिवर्तन का कारण पृथ्वी की असामान्य गुरूत्व फील्ड है । सामान्यतया हम जिस कक्षा में भ्रमण करते हैं वह पृथ्वी की भू-मध्यरेखा के समानांतर होनी चाहिए लेकिन जब हमारे ऊपर सौर और चंद्र की ताकतों का प्रभाव पड़ता है तो हमारी कक्षा पृथ्वी की भू-मध्यरेखा के समानांतर नहीं रह पाती है तथा इसमें एक झुकाव आ जाता है । हम 24 घंटे में भ्रमण के दौरान अपनी निर्धारित स्थिति के संदर्भ में अंग्रेजी की संख्या "8" के आकार में घूमते हैं जैसा कि चित्र-7 में दिखाया गया है । भू-मध्यरेखा से संख्या "8" की ऊँचाई हमारी कक्षा अधिकतम झुकाव को प्रदर्शित करती है तथा संख्या "8" की चौड़ाई हमारी स्थिति में होनेवाले अधिकतम देशांतरीय परिवर्तन को स्पष्ट करती है ।

मेरा जीवन काल :

मनुष्य की भांति मेरा जीवन काल भी निश्चित होता है । मैं अमर नहीं हूँ । मेरा जीवन काल मुख्यतया मेरी ऊर्जा तंत्र की कार्यशीलता (जिसमें सौर सेलों तथा संचयन बैटरी की कार्यशीलता शामिल है), प्रणोदकों में प्रयुक्त ईंधन या नोदक की मात्रा तथा मेरे निर्माण में प्रयुक्त होने वाले अवयवों की कार्यशीलता और विश्वसनीयता पर निर्भर करता है । हमें अपनी जगह पर बनाये रखने के लिए प्रणोदकों को प्रज्वलित करना पड़ता है जिसमें नोदक खर्च होता है । नोदक के समाप्त होने के बाद मनुष्य का मेरे ऊपर से नियंत्रण समाप्त हो जाता है तथा फिर मैं अपनी निर्धारित जगह से हटकर भटकता रहता हूँ । उस स्थिति में मनुष्य मेरा प्रयोग नहीं कर पाता है । सामान्यतया मेरा जीवन काल 7 साल का होता है लेकिन सुना है कि उन्नतशील तकनीक और उत्तम कोटि के नोदक का प्रयोग करके मनुष्य ने मेरा जीवन काल 10 से 15 साल तक बढ़ा दिया है ।

अंतरिक्ष में हम कैसे टिके रहते हैं ?

अंतरिक्ष में हमारे शरीर और सौर चैनेलों का स्थायित्व एक विचित्र तरीके से किया जाता है । हमारे पूरे शरीर और चैनेलों को एक विद्युत मोटर की मदद से प्रचक्रित किया जाता है । इस तरीके को प्रचक्रण स्थायित्व कहते हैं । इस तरीके में हमारा पूरा शरीर, शरीर की अक्ष रेखा के सममिति में कंपन या प्रचक्रण करता रहता है । इन्टेलसैट-I प्रचक्रण स्थायित्व उपग्रह था तथा इन्टेलसैट-V उपग्रह 3-अक्षीय भार, संतुलित उपग्रह था ।

मेरे शरीर की संरचना :

मेरी संरचना प्रकृति ने नहीं बल्कि मनुष्य ने खुद की है और वह भी समयानुसार और आवश्यकतानुसार । इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारे सारे भाइयों का आकार और भार भिन्न-भिन्न प्रकार का होता गया जैसा कि चित्र-8 में दिखाया गया है । लेकिन हमारे सारे भाइयों की कार्य शैली और तौर तरीका एक सा है । हमारे शरीर की संरचना कई बातों पर निर्भर करती है । इनमें पहली बात यह है कि हमारे अंदर कितने उपकरण लगाये जाने हैं, प्रणोदक तंत्र का आकार और भार क्या है, हमें जिस यान या रॉकेट द्वारा अंतरिक्ष में भेजा जाना है उसके साथ हमारी जुड़ने की व्यवस्था कैसी है, हमारा अभिवृत्ति नियंत्रण तंत्र और एन्टेना किस प्रकार हैं, विद्युत ऊर्जा पैदा करने वाला तंत्र कैसा है तथा सौर पैनेल कितने बड़े हैं इत्यादि । हम जिस यंत्र के द्वारा संचार प्रक्रिया संपन्न करते हैं उसे ट्रान्सपान्डर कहते हैं । हमारी संचार क्षमता जितनी अधिक होगी, हमारे अंदर ट्रान्सपान्डर की संख्या भी उतनी ही अधिक होगी । वास्तव में टान्सपान्डर हमारा हृदय होता है । हमारे अंदर दूरादेश और दूरमिति तंत्र भी होते हैं । दूरादेश के द्वारा मनुष्य अंतरिक्ष में हमारा नियंत्रण करता है तथा दूरमिति तंत्र के माध्यम से वह पृथ्वी में बैठे हुए हमारे स्वास्थ्य का अवलोकन करता रहता है ।

हमारा हल्का होना नितांत आवश्यक है । हमारे भार का संबंध सीधे प्रमोचन यान की प्रमोचन क्षमता से होता है । इसीलिए भार को कम रखने के लिए हमारे

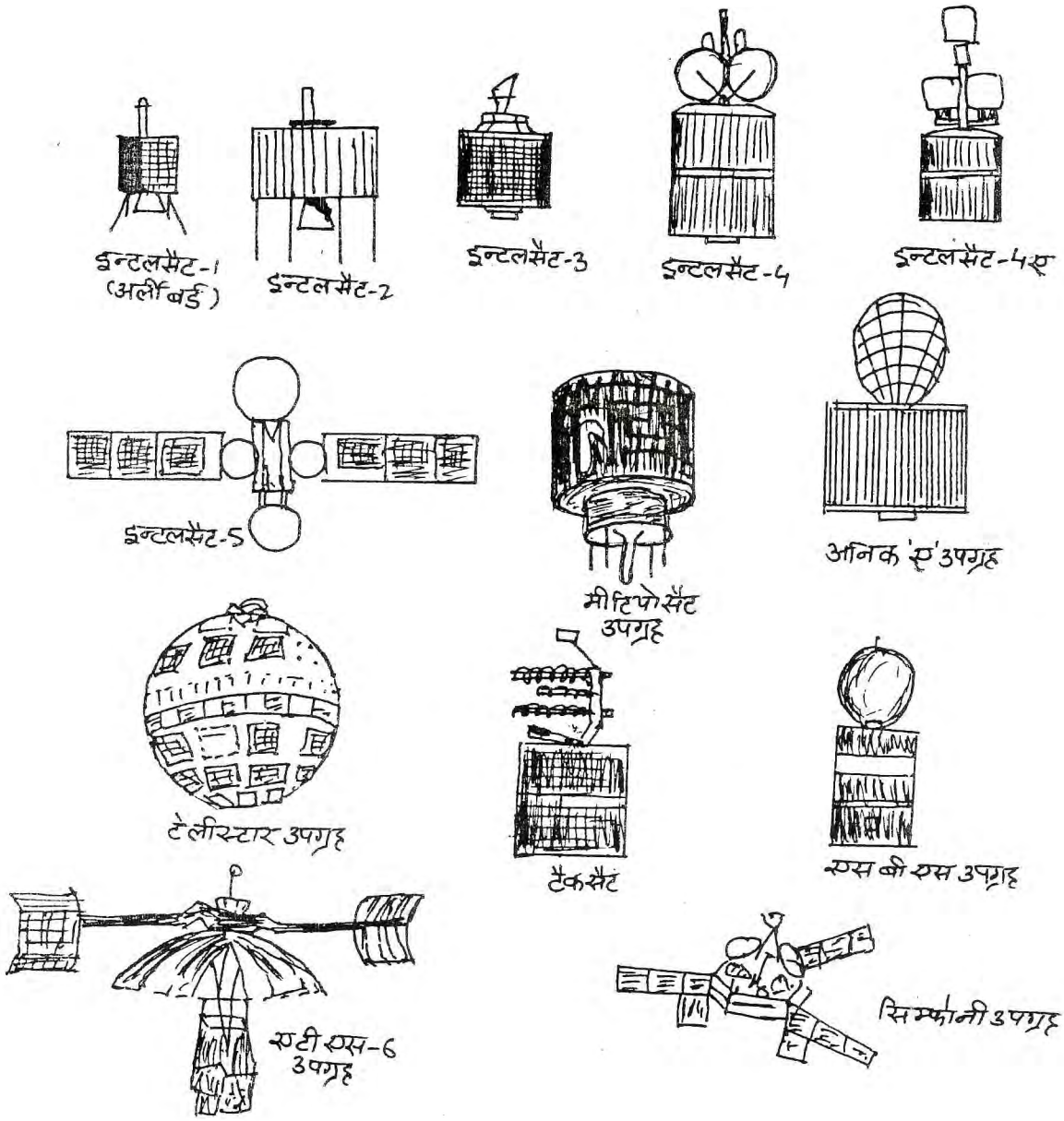

चित्र- 8 : समय के साथ साथ हमारी शारीरिक संरचना में भी बदलाव आता गया ।

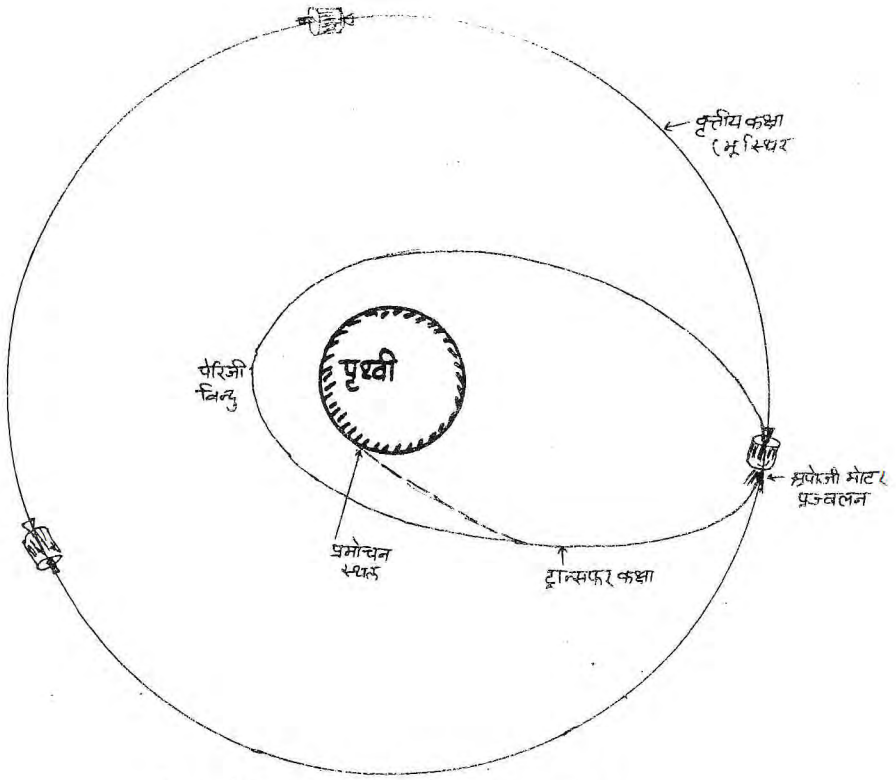

चित्र - 9 : अंतरिक्ष में हमारा प्रमोचन

शरीर का ढाँचा अल्यूमीनियम, टाइटेनियम और मैगनेशियम की मिश्र धातुओं से बनाया जाता है। हमारा ढाँचा इस बनाया प्रकार जाता है कि यंत्रों और अन्य उपकरणों को लगाने के लिए अधिक से अधिक स्थान प्राप्त हो सके।

हमारी विदाई :

हमारे निर्माण और जांच के बाद हमारी विदाई (यानी अंतरिक्ष में प्रमोचन) की तैयारी की जाती है। हमारी इस विदाई को हमारा परदेश गमन कहते हैं। हमारे परदेश गमन में कुछ ही मिनट लगते हैं, लेकिन अंतरिक्ष की निर्धारित कक्षा में तथा निर्धारित स्थिति तक पहुँचने में कई दिन लग जाते हैं। हमें अंतरिक्ष में भेजने के लिए शक्तिशाली रॉकेटों का प्रयोग किया जाता है। ये शक्तिशाली रॉकेट हमें पृथ्वी की दीर्घवृत्तीय कक्षा (जिसे ट्रान्सफर कक्षा भी कहते हैं) में छोड़ देते हैं। ट्रान्सफर कक्षा में पड़े-पड़े हमें कई दिन लग जाते हैं। ट्रान्सफर कक्षा में जब हम होते हैं तो हमारी पृथ्वी से निम्नतम दूरी को "पेरिजी" तथा अधिकतम दूरी को "अपोजी" कहते हैं। उसके बाद अप-भूर्द्रक (अपोजी बूस्ट) मोटर की मदद से उसे प्रज्वलित करके हमें समकालिक कक्षा में स्थापित किया जाता है। जैसा कि मैंने पहले बताया, कि हमारे शरीर के बाह्य भाग में चारों ओर अनेक प्रणोदक (थ्रस्टर) लगाये जाते हैं। इनकी सहायता से हमें अपने वास्तविक स्थान (अर्थात् अंतरिक्ष में वास्तविक स्थिति) पर स्थापित किया जाता हैं चित्र-9। वे शक्तिशाली रॉकेट जिनके द्वारा हमें स्थापित किया जाता है उनमें से कुछ के नाम हैं - योरप के एरियन 4 और एरियन 5 रॉकेट, अमरीका का डेल्टा रॉकेट, रूस का प्रोटान रॉकेट, चीन का लॉंग मार्च रॉकेट इत्यादि (चित्र-10)। हमें लेकर उड़ने वाले राकेट की गति बहुत अधिक होती है। यह कम से कम 7 मील प्रति सेकंड होनी चाहिए। इतनी गति से उड़ने पर हम पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति से मुक्त हो पाते हैं। कक्षा में जाकर हम अपना संचार स्थापन का

कार्य प्रांरभ कर देते हैं । वहाँ जाकर अगर हममें कोई ख़राबी आ जाय तो हमारा कोई इलाज नहीं हो सकता है । इलाज तभी तक संभव है जब तक हम पृथ्वी पर हैं । लेकिन महत्वाकांक्षी मानव की बुद्धि बहुत तीव्र होती है । अपनी इसी बुद्धि के द्वारा वह मुझे अंतरिक्ष में भी चैन नहीं लेने देता है । अब तो मनुष्य ने इस बात का भी प्रबंध कर लिया कि अंतरिक्ष में जाने के बाद अगर हममें कोई ख़राबी आ जाय तो मनुष्य हमें पुन: पृथ्वी पर वापस ला सकते है । यद्यपि यह एक साहसी और महंगा कार्य है और एक दो बार ही हो पाया है लेकिन संभव तो हो ही गया है । कुछ साल पहले इन्डोनेशिया का पलापा उपग्रह अंतरिक्ष में दौड़ने के बाद ख़राब हो गया था । इसकी मरम्मत की गयी तथा इसे पुन: अंतरिक्ष में भेजा गया । हमारा अंतरिक्ष में प्रमोचन स्पेश शटल के माध्यम से भी किया जाता है ।

इस प्रकार आप लोगों ने देखा कि हम मनुष्य के लिए कितने उपयोगी हैं । संचार उपग्रह की अनेक प्रकार की सेवाएँ - जैसे टेलीफोन सिग्नल, टेलीविजन सिग्नल, कंप्यूटरीकृत सिग्नल, ब्रॉडकास्ट सिग्नल, टेलीप्रिन्टर सिग्नल, फैक्स सिग्नल, उपग्रह संचार गोष्ठियाँ, मेडिकल डाटा, आपात कालीन सेवाएँ, इलेक्ट्रॉनिक सूचना, मेल समाचार पत्रों का प्रेषण, ट्रैफिक सूचना, मौसम विज्ञानी सूचना, वायुयानों और जलयानों के लिए नौ-संचालन सेवा तथा सुदूर संवेदन सेवा इत्यादि प्रदान कर सकते हैं और कर रहे हैं ।

हमारे आने वाले संचार उपग्रह भाइयों को और भी उत्तम कोटि का बनाने का प्रस्ताव है और उसी के मुताबिक उन्हें नयी नयी तकनीकों से सुसज्जित किया जा रहा है । नयी पीढ़ी के संचार उपग्रहों में निम्न तकनीकों का समावेश किया जा रहा हैं :-

क) अधिक चौड़ाई के ट्रान्सपान्डर का निर्माण ।

ख) आवृत्ति का पुन: प्रयोग (फ्रीक्वेन्सी री-यूज) का एक आम तकनीक की भांति प्रयोग । इससे आवृत्ति स्पेक्ट्रम को और भी अधिक अच्छे तरीके से प्रयोग किया जा सकता है ।

ग) अपलिंक के अभिग्रहण में सूक्ष्मग्राहकता की वृद्धि ।

घ) उपग्रहों से पृथ्वी ओर प्रेषित की जाने वाली पावर में वृद्धि । लेजर संचार उपग्रह ।

च) संचार बाधा (इन्टरफेरेन्स) में कमी ।

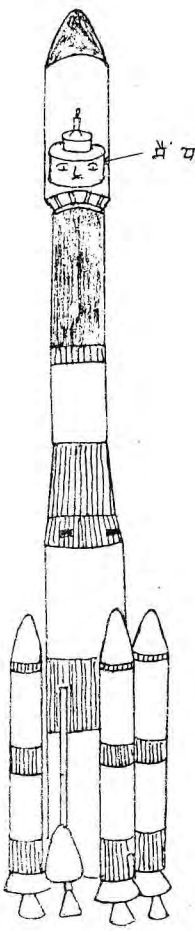

चित्र - 10 : मेरी विदाई । मुझे शक्तिशाली रॉकेटों के द्वारा अंतरिक्ष में भेजा जाता है, रॉकेट में मेरी सीट रॉकेट की चोंच में होती है ।

प) टाइम डिवीजन मल्टीपल एक्सेस (समय विभाजन बहु संकेत) तकनीक का उपयोग ।

फ) उपग्रह-स्विच्ड समय विभाजन बहु संकेतन तकनीक।

ब) समय-विभाजन स्विचिंग को प्रयोग करते हुए क्रमवीक्षण स्पॉट किरण पुंज ।

भ) उपग्रह में स्थापित स्विचिंग मैट्रिक्स (जिसकी प्रोग्रामिंग पृथ्वी से नियंत्रित की जा सके) ।

म) अंतरिक्ष में स्विच बोर्ड की भांति का प्रचालन ।

य) बहुउद्देशीय और बहु-आवृत्ति बैन्ड उपग्रह ।

र) मिलीमीटर आवृत्ति उपग्रह तंत्र ।

ल) लेजर संचार उपग्रह ।

आने वाले संचार उपग्रहों की ये विशिष्टाताएँ उपग्रहों की लंबे अर्से की आवश्यकताओं (मानव सेवा के लिए) को पूरा करेंगी यह हमारी मनोकामना है ।

वैज्ञानिक परिचय

अदम्य जिजीविषा एवं विलक्षण प्रतिभा के धनी : स्टीफेन हॉकिंग

17 जनवरी 2001, दिन शुक्रवार, स्थान चार हजार से अधिक श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ दिल्ली का सीरी फोर्ट प्रेक्षागार । लेकिन निस्तब्धता इतनी कि सांसों की आवाज तक सुनी जा सकती थी । कुछ ही क्षणों बाद स्पीच सिंथेसाइजर से इस निस्तब्धता को तोड़ती इस सदी के महानतम वैज्ञानिक का वाक्य निकला, "क्या आप मुझे सुन सकते हैं ?" अगले ही पल पूरा प्रेक्षागार तालियों से गूंज उठा । सभी श्रोता अभिभूत थे क्योंकि शताब्दी के सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंग अपनी व्हील-चेअर पर उनके सामने थे । यद्यपि 'अल्बर्ट आइंसटीन 2001 व्याख्यान माला' के अंतर्गत 'प्रिडिक्टिंग द फ्यूचर : फ्रॉम एस्ट्रोलॉजी टू ब्लैक होल्स' जैसे जटिल और गूढ़ विषय पर आयोजित इस व्याख्यान को पूर्ण रूप से समझ सकना तो भौतिकविदों एवं वैज्ञानिकों के ही वश की बात थी परंतु आम आदमी को उनके व्याख्यान को सुनने के लिए आकर्षित होने को एक श्रोता द्वारा व्यक्त प्रतिक्रिया से भली-भाँति समझा जा सकता है । प्रोफेसर हॉकिंग का सारगर्भित व्याख्यान समाप्त होने के बाद एक श्रोता ने कहा "स्टीफन के जटिल समीकरणों को समझना तो वैज्ञानिकों के ही वश की बात है, परंतु मैं यहाँ पर इसलिए आया कि उन्होंने अपनी विकलांगता को अपने अस्तित्व पर हॉवी नहीं होने दिया है । उनका जीवन इच्छाशक्ति की विकलांगता पर विजय की मिसाल हैं ।"

विश्वविख्यात दार्शनिक वैज्ञानिक गैलीलियो गैलिली की 300वीं पुण्यतिथि के दिन 8 जनवरी 1942 को ब्रिटेन के ऑक्सफोर्ड में जन्मे श्री हॉकिंग ने लंदन से 20 किमी. दूर उत्तर सेंट अलबांस शहर स्थित सेंट अलबांस स्कूल में अपनी प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण की । श्री हॉकिंग गणित पढ़ना चाहते थे परंतु उनके पिता इन्हें चिकित्सा विज्ञान पढ़ाना चाहते थे । ऑक्सफोर्ड के यूनिवर्सिटी कॉलेज में गणित विषय नहीं होने के कारण श्री हॉकिंग भौतिकी के छात्र बने और प्रथम श्रेणी में स्नातक की उपाधि प्राप्त की । उन दिनों चूंकि ऑक्सफोर्ड में कोई व्यक्ति कॉस्मोलॉजी विषय में अनुसंधान नहीं कर रहा था, इसीलिए श्री हॉकिंग ने कॉस्मोलॉजी के चुनौती भरे क्षेत्र में अनुसंधान कार्य प्रारंभ किया और पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की ।

ब्रह्मांड के गूढ़ रहस्यों की गुत्थियाँ सुलझाने वाले महान वैज्ञानिक प्रोफेसर स्टीफन हॉकिंग 21 वर्ष की आयु में ही पूरी तरह विकलांग बना देने वाले असाध्य रोग 'एमियाट्राफिक लेटरल सिलोरसिस' (ए.एल.एस.) से ग्रस्त हो गये, जिसके फलस्वरूप वे चलने-फिरने और बोल सकने में असमर्थ हो गये । परंतु यह व्याधि विद्वता एवं सोच-विचार की क्षमता या संवेदनशीलता पर कोई प्रभाव नहीं डालती है । कोई सामान्य व्यक्ति इस व्याधि से ग्रस्त होने के बाद भाग्य-भरोसे अपना शेष जीवन बिस्तर पर पड़े-पड़े गुजार देता लेकिन अदम्य जिजीविषा के धनी प्रोफेसर हॉकिंग ने अपनी इस बीमारी को एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया और ब्रह्मांड जैसे जटिल विषय पर अपना शोध प्रारंभ किया । प्रो. हॉकिंग अपने चेहरे की मांसपेशियों और बायें हाथ की कुछ उंगलियों को छोड़कर शरीर के किसी अन्य अंग का प्रयोग नहीं कर सकते हैं । अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए वे एक 'कंप्यूटर टच स्क्रीन' का सहारा लेते हैं जो उनकी व्हील चेअर से संबद्ध रहती है और इसी व्हील चेअर में लगा 'स्पीच सिंथेसाइजर' उनके चयनित शब्दों को स्वर देता है ।

अंग्रेजी की एक मशहूर कहावत है कि हर पुरुष की सफलता के पीछे किसी स्त्री का हाथ होता है । प्रोफेसर स्टीफेन हॉकिंग के साथ भी यही बात है । न्यूटन और आइंस्टीन जैसे महान वैज्ञानिकों के समतुल्य प्रतिभावान प्रोफेसर हॉकिंग ए.एल.एस से पीड़ित होने के बाद से अपने आप चल-फिर नहीं सकते हैं, उठ-बैठ नहीं सकते हैं और यहाँ तक कि साफ-साफ बोल भी नहीं सकते हैं । परंतु विज्ञान की दुनिया में वो आज जिन ऊँचाइयों पर पहुँच गये हैं उसमें उनकी जिजीविषा एवं पत्नी एलेना से मिली प्रेरणा और सहयोग का अप्रतिम योगदान है । प्रोफेसर हॉकिंग ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि

अपने असाध्य रोग के कारण वे जीवन से ऊब चुके थे, किंतु एलेना से विवाह ने उन्हें इतनी प्रेरणा दी कि उन्हें जीने का अर्थ मिल गया । तीन बच्चों के पिता प्रोफेसर हॉकिंग 1974 तक अपने हाथों से खा-पी लेते थे और अपनी पत्नी की सहायता से खुद बिस्तर पर सो जाते थे और बिस्तर से उठ भी जाते थे परंतु धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य खराब ही होता गया जिसके कारण 1980 के बाद से उन्हें चौबीस घंटे नर्सों की सेवा लेनी पड़ती है ।

'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' जैसी विश्व प्रसिद्ध पुस्तक लिखने वाले प्रोफेसर हॉकिंग ने यह स्वीकार किया है कि जब उन्हें पता चला कि वे शरीर को पूरी तरह विकलांग बना देने वाले असाध्य रोग से पीड़ित हैं तो उन्हें बहुत गहरा सदमा पहुँचा, परंतु एक दिन अस्पताल में जब उन्होंने अपने सामने के बिस्तर पर कैंसर पीड़ित एक युवक को देखा तो उन्हें लगा कि उनकी हालत औरों से बहुत अच्छी है और जब कभी वे अपने को विचलित महसूस करते तो उस लड़के का चेहरा याद करने लगते ।

ब्रह्मांड की उत्पत्ति कहाँ से हुई, और यह हमें कहाँ ले जा रहा है ? क्या ब्रह्मांड की उत्पत्ति का कोई समय है ? अगर हाँ तो उससे पहले क्या हुआ होगा ? समय की प्रकृति क्या है ? और क्या इसकी अबाध यात्रा पर कभी विराम लगेगा ? ये और ऐसे ही अनंत प्रश्न प्रोफेसर हॉकिंग के मनो-मस्तिष्क में कौंधते रहते हैं, और इन्हीं जिज्ञासाओं ने उन्हें ब्रह्मांड के रहस्यों को जानने के लिए प्रेरित किया । ब्रह्मांड की अनंतता पर किये गये अपने शोधों के लिए विख्यात प्रोफेसर हॉकिंग ने लिखा है कि किसी दिन ये उत्तर उतने ही स्पष्ट होगें जितना यह तथ्य कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती हैं या फिर इतने हास्यास्पद साबित होगें कि अनेक पौराणिक कथाएं । जो भी हो, सच का फैसला सिर्फ समय ही कर सकेगा । वैज्ञानिकता की लक्ष्मण रेखा से निकल कर दार्शनिकता की दहलीज पर पहुँचे प्रोफेसर हॉकिंग ने इनमें से अनेक प्रश्नों का उत्तर अपनी पुस्तक 'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' में देने का प्रयास किया है । प्रोफेसर हॉकिंग की यह पुस्तक संपूर्ण विश्व में सबसे अधिक बिकने वाली नॉन-फिक्शन पुस्तकों में तीसरे नंबर पर है । और 'संडे टाइम्स,' लंदन की बेस्ट सेलर सूची में 237 सप्ताहों तक स्थान पाती रही है जो कि अब तक का एक विश्व रिकार्ड हैं । अब तक यह पुस्तक दुनिया की चालीस से अधिक भाषाओं में अनूदित की जा चुकी है । प्रोफेसर हॉकिंग द्वारा लिखित अन्य विश्व प्रसिद्ध पुस्तकों में 'ब्लैक होल्स एंड बेबी यूनीवर्स' एवं 'ए लार्ज स्केल स्ट्रक्चर ऑफ टाइम' आदि प्रमुख हैं ।

प्रोफेसर हॉकिंग ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक, 'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित भारतीय भौतिकशास्त्री डॉ. सुब्रमण्यम् चंद्रशेखर और 'चंद्रशेखर सीमा' के नाम से चर्चित उनकी खोज को एक बुलंद मुकाम दिया है । प्रोफेसर हॉकिंग ने डॉ. चंद्रशेखर की प्रशंसा करते हुए लिखा है, कि इस भारतीय वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम यह गणना की कि अपनी ऊर्जा का क्षय कर चुके किसी ठंडे ग्रह (कोल्ड स्टार) का द्रव्यमान अगर सूर्य से डेढ़ गुणा ज्यादा होता है तो वह अपने गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध खुद को स्थिर नहीं कर सकता । वस्तुतः यही द्रव्यमान 'चंद्रशेखर सीमा' कहलाती है । ग्रहों और उनकी समयहीनता के गूढ़ रहस्यों के विषय में प्रोफेसर हॉकिंग का कहना है कि ग्रह लंबे समय तक स्थिर रहेंगे । लेकिन अंततः उनका हाइड्रोजन और नाभिकीय ईंधन समाप्त हो जायेगा । विचित्र बात यह है कि जो ग्रह जितने ज्यादा ईंधन के साथ अपनी अस्तित्व यात्रा प्रारंभ करता है वह उतना ही पहले चुक जाता है ।

रॉयल सोसायटी के फेलो तथा अमरीकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के सदस्य प्रोफेसर हॉकिंग पहले गोनविले एंड कीज कॉलेज, लंदन में प्रोफेसर के पद पर आसीन हुए । तदुपरांत 1973 में वे प्रयुक्त गणित तथा व्यावहारिक भौतिकी विभाग में आ गये और 1979 में उन्हें उस लब्धप्रतिष्ठित लुकासियन चेअर का प्रोफेसर बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिस पर 1663 में आइजैक न्यूटन आसीन रह चुके हैं । अपनी विषम शारीरिक अवस्था के कारण उत्पन्न इतनी कठिन और विषम परिस्थितियों में भी प्रोफेसर हॉकिंग ने ब्रह्मांड के जटिल और गूढ़ रहस्य को सुलझाने का कार्य अनवरत रूप से जारी रखा है । उन्होंने आइंस्टीन के सामान्य सापेक्षतावाद के सिद्धांत को क्वांटम

सिद्धांत से जोड़कर देखा तो पाया कि ब्लैक होल्स पूरी तरह से काला नहीं हैं और उससे निरंतर विकिरण होता है जो धीरे-धीरे वाष्पित होता है । उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि किसी काल्पनिक समय में ब्रह्मांड की कोई सीमा या छोर नहीं हैं । क्वांटम भौतिकी, सापेक्षिकता के सिद्धांत और अंतरिक्ष के अनसुलझे रहस्यों पर शोध करने वाला हमारे समय का यह महान दार्शनिक एवं वैज्ञानिक अपने कैंब्रिज स्थित प्रयोगशाला में सुबह ग्यारह बजे पहुंच जाता है और रात्रि आठ बजे से पहले वापस नहीं लौटता है ।

'टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च' की सरोजनी दामोदर इंटरनेशनल फेलोशिप, एवं 'सेंटर फॉर फिलासफी एंड फाउन्डेशन फॉर साइन्स' के निदेशक प्रोफेसर रणजीत नायर के आमंत्रण पर सोलह दिन की यात्रा पर भारत आये प्रोफेसर हॉकिंग की भारत की यह दूसरी यात्रा थी और भारतीयों ने उनकी मेहमाननवाजी में कोई भी कसर नहीं छोड़ी । परंतु भारत की सरज़मीं से उनके परिवार के रिश्ते इससे भी कहीं ज्यादा पुराने हैं। उनका परिवार 1959 में लखनऊ में गोखले मार्ग पर रहा करता था और उस समय उनके डाक्टर पिता लखनऊ स्थित 'सेन्ट्रल ड्रग रिसर्च इंस्टीट्यूट' में उष्ण कटिबंधीय रोगों पर शोध कर रहे थे । उनकी दो बड़ी बहनें, मेरी एवं फिलीपिया लोरेटो कान्वेंट स्कूल, लखनऊ की छात्राएं थीं । जिस समय उनकी बहनें लखनऊ में पढ़ रही थी उस समय प्रोफेसर हॉकिंग ऑक्सफोर्ड के छात्र थे ।

मुंबई में 'भविष्य में विज्ञान' पर खचाखच भरे सभागार में अपने अभिभाषण में प्रोफेसर हॉकिंग ने नयी सहस्त्राब्दी में विज्ञान की संभावनाओं की विस्तार से चर्चा करते हुए कहा कि आनेवाले दिनों में लोगों का वास्ता अनुवांशिक इंजीनियरिंग, बेहिसाब जनसंख्या वृद्धि और कंप्यूटर प्रौद्योगिक के क्षेत्र में छलांग जैसी प्रमुख वास्तविकताओं से पड़ेगा । उन्होंने आगाह किया कि मौजूदा जनसंख्या वृद्धि दर से अगले 40 वर्षों में दुनिया की जनसंख्या दुगनी हो जायेगी जिसके परिणामस्वरूप एक आशंका यह है कि हम खुद को मिटा देंगे । बढ़ती जनसंख्या का असली खतरा यह होगा कि हम नृशंसता पर उतर आयेंगे और धरती पर सबको मार डालेंगे । उन्होंने कहा कि अनुवांशिक इंजीनियरिंग एक वास्तविकता बनेगी, भले ही हम इसे चाहे या नहीं । मानव शरीर से बाहर शिशु विकसित हो सकेंगे । मानव जाति और डी एन ए की परिवर्तनशील जटिलताओं के कारण आने वाले दिनों में नयी चुनौतियों का सामना करने के लिए उन्नत मानव गुणों की दरकार होगी । परंतु 'उन्नत मानव' के विकास के कारण सामाजिक और राजनीतीक समस्याएं सामने आयेंगी । मुंबई में आयोजित "स्ट्रिंग्स 2001" नामक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के बाद किसी ने जब उनसे पछा कि 'ईश्वर में विश्वास रखने वाले को आपके सिद्धांत को मानने के लिए क्या आस्था बदलनी होगी ? प्रोफेसर हॉकिंग का उत्तर था, "अगर आप विज्ञान में मेरी तरह विश्वास करते हैं तो मैं कहूंगा कि कुछ नियम कायम रहेंगे और ऐसे नियम ईश्वर की परिभाषा या उसके अस्तित्व का प्रमाण मुहैया नहीं कराते हैं ।"

प्रोफेसर हॉकिंग के दिल्ली प्रवास के समय जब उनसे पूछा गया कि "क्या आपने अपने वर्तमान कैरियर के अलावा भी किसी अन्य कैरियर के बारे में कभी सोचा था ?" प्रोफेसर हॉकिंग ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, "वस्तुतः ए एल एस ने व्यवहारिक भौतिकी के अलावा मेरे किसी अन्य कैरियर की संभावनाओं को ही समाप्त कर दिया है । इस असाध्य रोग से पीड़ित होने के पूर्व मैंने राजनीतिज्ञ बनने की सोचा था और यदि मैं राजनीतिज्ञ बन गया होता तो आज मैं ब्रिटेन का प्रधानमंत्री होता । खैर, मैं खुश हूँ कि मैंने यह अवसर टोनी ब्लेयर के लिए छोड़ दिया । मैं सोचता हूँ कि आज मुझे ब्लेयर से अधिक कार्य-संतुष्टि है और मेरे द्वारा किये गये कार्यों की तुलना में अधिक समय तक याद किये जायेंगे।" ज्योतिष विद्या के बारे में पूछे गये एक अन्य प्रश्न के उत्तर में प्रोफेसर हॉकिंग ने कहा कि, "अधिकांश वैज्ञानिक ज्योतिष विज्ञान से सिर्फ इस कारण से असहमत नहीं रहते हैं या उस पर विश्वास नहीं करते हैं कि उसका वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है या उसमें वैज्ञानिकता का अभाव है, अपितु इस कारण असहमत रहते हैं कि अन्य वैज्ञानिक सिद्धातों की तरह इसे प्रयोगों द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता है, और

अन्य वैज्ञानिक प्रयोगों की तरह इसके परिणाम स्थिर और एक जैसे नहीं होते हैं।" दिल्ली में अपने चार दिनों के व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद प्रोफेसर हॉकिंग राजधानी के हृदयस्थल स्थित 18वीं सदी के प्राचीन भारतीय ज्योतिष की मशहूर मिसाल 'जंतर-मंतर' भी देखने गये। इस ऐतिहासिक स्थल पर अपनी पत्नी के साथ व्हील चेअर पर वे एक घंटे से भी अधिक समय तक घूमे और इससे अत्यंत प्रभावित हुए।

प्रोफेसर हॉकिंग की भारत यात्रा की समाप्ति के 24 घंटे पूर्व डॉ. श्रीमती रुक्मिणी नायर ने अपनी रचित दो कविताएं - "कॉस्मिक सेंसरशिप एंड स्टारशिप' (प्रोफेसर हॉकिंग को समर्पित) तथा 'ए हीरोज वेलकम टू इंद्रप्रस्थ' (प्रोफेसर हॉकिंग एवं उनकी पत्नी एलेना को समर्पित) तथा नोयल बेट्टी द्वारा रचित 'गैलीलियो' शीर्षक से कविताओं का एक सेट प्रोफेसर हॉकिंग को भेट स्वरूप प्रदान किया। श्रीमती नायर प्रोफेसर रणजीत नायर की पत्नी हैं और उन्होंने कैंब्रिज से भाषा विज्ञान में पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की है। 'ए हीरोज वेलकम टू इंद्रप्रस्थ' में डॉ. (श्रीमती) नायर ने लिखा है -

..... "शिवा नोज भाँगड़ा,
नॉर द पंजाबी रेप,
बट ही इज ए डिवाइन डांसर,
हू नैवर टेक्स ए नैप
..... वेलकम टू इंडिया,
इट्स जस्ट ए बि-फॉग्ड सिटी
बट यू गेव इट लस्टर" .....

उनकी भारत यात्रा पर 'द हिंदू' समाचार पत्र ने 'जीवित आइंस्टीन' की उपाधि से उन्हें सम्मानित किया। जिस प्रकार मिल्टन दृष्टिहीन होने के बावजूद महान काव्य रचे, बीथोविन ने बधिर होने के बाद भी विश्व- प्रसिद्ध संगीत रचनाएं तैयार की, उसी प्रकार शारीरिक बाधाओं को पार कर आगे बढ़ने वाली अदम्य मानव जिजीविषा के अप्रतिम उदारहण स्टीफेन हॉकिंग ने शरीर के सभी अंगों का उपयोग न कर सकने के बावजूद संपूर्ण विश्व को एक नयी वैज्ञानिक सोच और दिशा प्रदान करने वाले जीवित किंवदंती बन गये हैं तथा विश्व के उन तमाम लोगों के लिए प्रेरणा स्रोत बन गये हैं जो अनेक असाध्य रोगों के कारण जीवन से निराश हो जाते हैं।

डॉ. राज किशोर
डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय,
फैजाबाद (उ. प्र.)

भारत का गौरव - वैज्ञानिक ए. पी. जी. अब्दुल कलाम

भारतरत्न एवं भारतीय रॉकेट प्रौद्योगिकी के सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ डॉ. अबुल पाकीर जैनुलाब्दीन अब्दुल कलाम का जन्म तामिलनाडू के रामेश्वरम गांव में 15 अक्तूबर 1931 को एक साधारण नाव मालिक के घर में हुआ था। मद्रास इन्स्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में एयरो इंजीनियरिंग में निपुणता हासिल करने के बाद बैंगलोर स्थित हिंदुस्तान एयरोनॉटिकल लिमिटेड में एक प्रशिक्षणार्थी के रूप में प्रवेश लिया और फिर 1958 में 250 रुपए प्रतिमाह के वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक के पद पर दिल्ली में प्रतिरक्षा मंत्रालय के आधीन तकनीकी विकास एवं उत्पादन निदेशालय में कार्य करने लगे। अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं लगन के कारण एक साल के अंदर ही डॉ. आर. वर्धराजन के नेतृत्व में सुपरसॉनिक टारगेट एयरक्राफ्ट के अभिकल्पन में उल्लेखनीय कार्य करके दिखाया। कुछ समय कानपुर में एयरक्राफ्ट और आर्मामेंट परीक्षण इकाई में कुछ और ट्रेनिंग तथा आवश्यक प्रशिक्षण के बाद दिल्ली में 'डार्ट' परियोजना और फिर बैंगलोर में एयरोनॉटिकल विकास संगठन में कार्य करने लगे। तत्कालीन प्रतिक्षा मंत्री डॉ. वी. के. कृष्णामेनन से प्रोत्साहन पाकर डॉ. कलाम 550 किग्रा. के हॉवरक्राफ्ट बनाने में सफल हुए। हालांकि इस दौरान उन्हें कई कठिनाइयों एवं आलोचनाओं को सामना करना पड़ा, फिर भी अपने दृढ़ निश्चय से वे आगे बढ़ते गये। डॉ. विक्रम साराभाई और प्रो. एम. जी. के. मेनन ने उनको इंडियन कमीटी फॉर स्पेस रिसर्च में रॉकेट इंजीनियर के पद के लिए चुना और फिर 1962 में छः महिनों के लिए नासा में प्रशिक्षण के लिए भेजा। यहां प्रशिक्षण के दौरान जिन बातों ने उन्हें सबसे अधिक प्रभावित किया उनमें से एक थी वालोप फ्लाइट फेसिलिटी के भवन में टीपू सूल्तान के रॉकेट जैसे

शास्त्रों की पेंटिंग तथा दूसरी वहां के लोगों की समस्याओं से जूझने से बजाये उनका हल निकालने कि प्रवृत्ति ।

नासा से वापस आने के बाद 21 नवंबर 1963 को नासा द्वारा निर्मित मिके-अपाचे नामक भारत का पहला रॉकेट का प्रमोचन हुआ । इस परियोजना में वे रॉकेट समाकलन एवं सुरक्षा के इन्चार्ज थे । यह मानना कि बीसवीं शताब्दी में रॉकेट के विकास की सोच अठारहवीं शताब्दी के टीपू सुल्तान के रॉकेटों के स्वप्न की पुनर्जागृति थी, अतिशयोक्ति नही होगी ।

8 अक्तूबर 1972 को उत्तर प्रदेश बरेली एयरफोर्स बेस में सैना एयरक्राफ्टों तो मर्यादित जगह के अंदर उड़ाने के लिए तैयार रॉकेट-एसिस्टेड टेक ऑफ प्रणाली यानी रोटो के सफल परीक्षण के बाद उन्हें 1973 में अंतरिक्ष प्रमोचन वाहन यानी SLV - III की जिम्मेदारी दी गयी जिसके तहत डॉ. कलाम ने 18 जुलाई 1980 को रोहिणी उपग्रह को ऑरबिट में स्थापित कर राष्ट्र को गौरवान्वित किया । ऐसी जटिल प्रणाली थी जिसमें 250 उपसम्मुच्य एवं 44 उपप्रणालियां थीं । इन सबकी जानकारी को आत्मसात करके सफलता प्राप्त कर दिखाना इस महान इंजीनियर-वैज्ञानिक जो आज भारत के श्रेष्ठतम टैक्नोक्रेट बन गये की निष्ठा का ही कमाल है । फरवरी 1982 में उन्हें हैदराबाद स्थित प्रतिरक्षा अनुसंधान तथा विकास प्रयोगशाला के निदेशक का कार्य भार सौंपा गया । यहां पर उन्होंने प्रबंधन में कर्मचारियों की भागीदारी यानी Management by Participation के मूल मंत्र को अपनाते हुए । समाकलित निर्देशित प्रक्षेपास्त्रों के विकास कार्यक्रम यानी Integrated Guided Missile Development project के अंतर्गत पृथ्वी, त्रिशूल, आकाश, नाग और अग्नि जैसे प्रक्षेपास्त्रों को मूर्तिमान कर दिखाया जिससे भारत को प्रतिरक्षा के क्षेत्र में काफी हद तक आत्मनिर्भरता एवं हौसला मिला ।

प्रथम उपग्रह प्रमोचन वाहन SLV-3 और अग्नि जैसी सफल परियोजनाओं में उनके पूर्णत: सम्मिलित रहने से उन्हें अभी हाल के वर्षों की राष्ट्रीय परियोजनाओं में भाग लेने का अवसर मिला । 1998 के नाभिकीय परीक्षण में भी उन्होंने एक अहम् भूमिका निभाई है । उन्हें अंतरिक्ष विभाग, परमाणु ऊर्जा विभाग तथा प्रतिरक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन के वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों के साथ काम करने का मौका मिला जिसने उनमें विश्वास जगाया कि यदि तीनों विभागों की वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक शक्ति को एक साथ मिला दिया जाये तो हम संसार के विकसित राष्ट्रों की तरह एक ताकत बन सकते हैं ।

डॉ. कलाम एक सहृदय, नम्र स्वभाव एवं नेक दिल इंसान हैं जो सही मायने में एक ऐसे लीडर यानी नेता हैं जो किसी भी परियोजना में लगे सभी सहयोगियों को एक साथ लेकर आगे चलते हैं । उनका अपने सहयोगियों के साथ एकदम आगे चलते हैं । स्पष्ट संचार यानी Communication रहता हैं, जो उनकी सफलता में सबसे अहम् भूमिका निभाता है । डॉ. कलाम ने खुद कहा है कि कोई यदि मुझसे भारतीय रॉकेट कार्यक्रम में मेरे व्यक्तिगत योगदान के बारे में पूछता है तो मैं यही कहूँगा कि मैंने नवयुवकों की टीम के लिए काम का एक ऐसा वातावरण तैयार किया है जिसके बदौलत वे अपना दिल और दिमाग पूर्णत: जिम्मेदारी के साथ मिशन की सफलता पर लगा देते हैं ।

उनके व्यक्तित्व का एक और अहम पहलू यह है कि औसतन 18 घंटे काम करने के उपरांत भी अपनी सफलता का श्रेय अपने आंरभिक शिक्षकों, अपने सहयोगियों और देश के महान भविष्य दृष्टा यानी विजनरी प्रो. साराभाई, प्रो. सतीश धवन तथा डॉ. ब्रह्मप्रकाश के प्रोत्साहन को देते हैं । वे एक अच्छे वीणा वादक तथा कवि भी हैं । ईश्वर की शक्ति पर उनको आस्था है । उन्होंने खुद कहा है कि भगवान का दया हमारी पैतृकता में आती है । यह खून की रेखा मेरे साथ समाप्त हो जायेगी परंतु उसकी दया सदैव रहेगी ।

भारत सरकार में प्रतिरक्षा मंत्री और अनुसंधान एवं विकास के सचिव के प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार, पद्मभूषण, पद्मविभूषण, नेशनल डिजायन पुरस्कार, डॉ. वीरेंद्र रॉय अंतरिक्ष पुरस्कार इत्यादि से सम्मानित डॉ. कलाम जिन्होंने 1995-2005 का प्रतिरक्षा आत्मनिर्भरता मिशन तथा भारत का प्रौद्योगिकी मिशन - 2020 हमारे राष्ट्र को दिये हैं, हम सबके लिए प्रेरणा श्रोत हैं । उनका नेतृत्व बना रहे यही हमारी शुभकामनाएं हैं ।

डॉ. गो. प्र. कोठियाल
तकनीकी भौतिकी एवं प्रास्म इंजी. प्रभाग,
भा प अ केंद्र, मुंबई - 400 085.

टिप्पणियां

1. भोजन के पोषक तत्त्व कैसे बनाये रखें ?

मनुष्य को कार्य करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है तथा हमें ऊर्जा भोजन से प्राप्त होती है । हमारा भोजन हमें पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा प्रदान करे इसके लिए आवश्यक है कि हमारे भोजन में समस्त पोषक तत्त्व विद्यमान हों । भोजन के प्रमुख पोषक तत्त्व हैं-कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज लवण । असंतुलित भोजन हमें पर्याप्त ऊर्जा प्रदान नहीं कर सकता और हमारा शरीर अनेक बीमारियों का शिकार हो सकता है ।

भोजन के पोषक तत्त्वों को बनाये रखने के लिए यदि हम छोटी-छोटी बातों को ध्यान में रखें तो भोजन की पौष्टिकता को बनाये रखकर पूर्ण लाभ प्राप्त कर सकते हैं । हम नित्यप्रति अनेक प्रकार की सब्जियों को भोजन में प्रयोग करते हैं । सब्जियाँ अनेक प्रकार के पोषक तत्त्व जैसे, विटामिन एवं खनिज लवणों से भरपूर होती हैं । ये पदार्थ हमारे स्वास्थ्य के लिए अति-आवश्यक हैं । सामान्यतः देखने में आता है कि घरों में सब्जियों को काटने के पश्चात उन्हें पानी से खूब धोया जाता है । इस क्रिया में सब्जियों के अनेक पोषक तत्त्व पानी के साथ बहकर व्यर्थ हो जाते हैं । इससे हमें पूर्ण रूप से पोषक तत्त्व प्राप्त नहीं हो पाते हैं । अतः सब्जियों के पोषक तत्त्वों को बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि इन्हें काटने से पूर्व ही धो लेना चाहिए । इससे पोषक तत्त्व बने रहेंगे । सब्जियों को काटते समय ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन्हें यथासंभव बड़े टुकड़ों में काटा जाय । छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने से सब्जियों को पकाते समय खनिज लवणों एवं अन्य पोषक तत्त्वों की अधिक मात्रा वाष्प के साथ उड़ जाती है ।

हरी पत्तेदार सब्जियों का हमारे स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक महत्व है । पत्तेदार सब्जियाँ लौह तत्त्व, विटामिनों एवं खनिज लवणों से युक्त होती हैं । साथ ही इनमें रेशा नामक पदार्थ भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहता है जो हमारे पाचन तंत्र को स्वस्थ रखता है । इनके प्रयोग से पेट साफ रहता है तथा कब्ज की शिकायत दूर होती है। हरी सब्जियों को काटने से पूर्व ही धो लेना चाहिए और धीमी आँच पर अधिक से अधिक दो-तीन मिनट तक ही पकाना चाहिए, तेज आँच पर अधिक देर तक पकाने से सब्जी के अधिकांश विटामिन एवं पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं ।

सब्जियों को तभी काटना चाहिए जब कि इन्हें पकाने की पूर्ण तैयारी कर ली जाय । काफी देर से काटकर रखी सब्जियों के पोषक तत्त्वों में कमी हो जाती है । सब्जियों को हमेशा ढक कर पकाया जाना चाहिए । खुले बर्तन में पकाने पर अनेक पोषक तत्त्व भाप के साथ उड़ जाते हैं । सब्जियों को पकाने में पानी का प्रयोग कम मात्रा में किया जाना चाहिए । सब्जी पकाने के समय नमक प्रारंभ में न मिलाकर पकने के अंत में मिलाया जाये तो इससे सब्जी अधिक पोषक एवं स्वादिष्ट बनती है । हरी सब्जियाँ पकाये जाने पर अधिक मात्रा में पानी छोड़ती हैं । इस पानी को फेंकना नहीं चाहिए बल्कि सूप की तरह पी लेना चाहिए क्योंकि सब्जियों द्वारा छोड़ा गया पानी पोषक तत्त्वों से युक्त होता है ।

सब्जियों की ही तरह फल भी हमारे स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं । फल अनेक पोषक तत्त्वों, विटामिनों, खनिज लवणों आदि से परिपूर्ण होते हैं । फलों को काटने से पूर्व स्वच्छ जल से अच्छी तरह धो लेना चाहिए और काटने के बाद तुरंत प्रयोग कर लेना चाहिए। कुछ फलों जैसे - सेब, आड़ू, नाशपाती आदि को छिलके सहित प्रयोग किया जाना लाभदायक होता है क्योंकि इन फलों के छिलके पोषक तत्त्वों से युक्त होते हैं । सलाद के लिए प्रयुक्त मूली, खीरा एवं ककड़ी को धोकर छिलके सहित काटना चाहिए । यदि सलाद में नमक मिलाना हो तो प्रयोग करने से तुरंत पहले ही नमक मिलाना चाहिए, सलाद में नमक मिलाकर देर तक रखने पर इसके पोषक तत्त्व बाहर निकल जाते हैं जिससे पोषक तत्त्वों में कमी हो जाती है ।

दाल, चावल आदि तैयार करने से पूर्व इन्हें धोया जाता है । प्रायः देखा जाता है कि दाल अथवा चावल पकाने से पूर्व इन्हें खूब रगड़कर कई बार धोया जाता है जो कि उचित नहीं है । इन्हें अधिक रगड़कर बार-बार

धोने से इनमें पाये जाने वाले कुछ पोषक तत्त्व जैसे, विटामिन बी पानी के साथ बह जाते हैं । दालों को छिलकों सहित प्रयोग करना लाभदायक होता है । दालों को धोकर कुछ देर तक भिगो देने से दालें शीघ्र पकती हैं । ध्यान देने योग्य है कि जिस जल में दालों को भिगोकर रखा गया हो उस जल को फेंकना नहीं चाहिए बल्कि उसका प्रयोग दाल पकाने में करना चाहिए क्योंकि यह जल पोषक तत्त्वों से युक्त होता है ।

दाल, चावल आदि खाद्य पदार्थों को भी ढक कर पकाना चाहिए । यदि संभव हो तो भोजन तैयार करने के लिए प्रेशर कुकर का प्रयोग किया जाना चाहिए । प्रेशर कुकर में भोजन अधिक स्वादिष्ट, पौष्टिक एवं शीघ्र तैयार होता है । चावल तैयार करते समय उतनी ही मात्रा में पानी मिलाना चाहिए जितना कि आवश्यक है । यदि पकाते समय पानी की मात्रा अधिक हो जाये और चावल पकने के मध्य अथवा अंत में शेष पानी को निकालना पड़े तो इस निकाले गये पानी का प्रयोग दाल में मिलाकर किया जा सकता है अथवा नमक एवं हल्का मसाला मिलाकर पीया जा सकता है ।

यदि दालों को 24 से 36 घंटे पूर्व भिगोकर अंकुरित कर दिया जाय तो इन अंकुरित दालों में पोषक तत्त्वों की मात्रा में वृद्धि हो जाती है और ऐसी दाल शीघ्र तथा आसानी से पचने योग्य होती है । अंकुरित अनाजों को कच्चा प्रयोग करने पर अधिक मात्रा में पोषक तत्त्व मिलते हैं परंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि अंकुरित अनाजों को कच्ची स्थिति में प्रयोग करने के लिए कम मात्रा लेनी चाहिए । अधिक मात्रा में कच्चे अनाज के प्रयोग से पाचन तंत्र खराब होने का भय बना रहता है ।

प्राय: रोटी बनाने से पूर्व आटे को महीन छलनी से छानकर चोकर अलग कर लिया जाता है जो उचित नहीं है । रोटी के लिए आटे का प्रयोग चोकर सहित किया जाना चाहिए क्योंकि गेहूँ का चोकर अनेक पोषक तत्त्वों से समृद्ध होता है तथा चोकर युक्त आटे से तैयार की गयी रोटी आसानी से पचायी भी जा सकती है जिससे पाचन तंत्र स्वस्थ रहता है ।

पीने हेतु दूध का प्रयोग करने से पूर्व इसे उबालना आवश्यक होता है । दूध एक संपूर्ण आहार है क्योंकि इसमें अधिकांश आवश्यक पोषक तत्त्वों पाये जाते हैं । यदि दूध को बहुत देर तक एवं बार-बार उबाला जाय तो इसके पोषक तत्त्वों में कमी होने लगती है । यदि खीर बनानी हो तो पहले चावल को पानी के साथ पकाकर बाद में दूध के साथ कुछ देर तक पकाना चाहिए अन्यथा सीधे दूध के साथ चावल पकाने पर देर तक दूध के उबालने रहने से अधिक पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं और इस प्रकार तैयार खीर पौष्टिक नहीं होती । दूध उबालने के लिए यदि लोहे के बर्तन का प्रयोग किया जाय तो इसमें लौह तत्व की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है ।

भोजन तैयार करने के पश्चात शीघ्र प्रयोग कर लेना चाहिए । गर्म भोजन अधिक स्वादिष्ट एवं पोषक होता है । यदि उक्त छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देकर व्यवहार में लाया जाय तो हम उसी भोजन को स्वास्थ्य के लिए अधिक पोषक बना सकेंगे । अच्छा स्वास्थ्य सबसे बड़ा धन है तथा स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है ।

प्रकाशचंद्र अवस्थी
ग्राम - कुंजनपुर, पो - गंगोलीहाट
जिला - पिथौरागढ़ 262 522 (उत्तरांचल)

2. क्यों चली जाती है हमारी याददाश्त ?

प्राय: सुनने को मिलता है कि किसी विशेष घटना, दुर्घटना होने पर अमुक की याददाश्त चली गयी है । इसे ही स्मृति हीनता अथवा स्मृति लोप कहा जाता है । याददाश्त जाने के बाद पुन: कुछ महीनों या वर्षों पश्चात याददाश्त वापस भी आ जाती है । स्मृतिहीनता में यह भी संभव है कि व्यक्ति कुछ दिनों तक सारी बातें भूल जाये एवं पुन: उसे धीरे-धीरे सब कुछ याद आने लगे किंतु कुछ ही दिनों पश्चात वह पुन: सब कुछ भूल जाय ।

याददाश्त कायम रखने वाली कोशिकाएं मस्तिष्क के पीछे उस स्थान पर पायी जाती हैं, जिसके नीचे की

कोशिकाएं देखने में मदद करती हैं । यह भाग खोपड़ी की मजबूत हड्डी से सुरक्षित रहता है और सोचने, महसूस करने तथा पहचान करने वाले केंद्रों से जुड़ा रहता है । याददाश्त बनाये रखने वाली कोशिकाएं यहीं पर प्रत्येक तरह की याद विद्युत रासायनिक संकेतों के रूप में एकत्रित रखती हैं ।

याददाश्त की क्षमता भी प्रत्येक व्यक्ति की एक समान नहीं होती है । कुछ लोगों की याददाश्त तो इतनी तेज होती है कि किसी घटना के बारे में मात्र जरा सा सोचकर इतनी बारीकी से विवरण प्रस्तुत कर देते हैं कि मानो तस्वीर देखकर बता रहे हों । विज्ञान जगत में इस तरह की याददाश्त को फोटोग्राफिक स्मृति (इसाइडेटिक) कहा जाता है ।

इस तरह की स्मृति के विपरीत कुछ लोगों की याददाश्त ऐसी होती है कि उन्हें कुछ देर पहले की घटना भी ठीक ठीक याद नहीं रहती है और वर्षों पहले घटित घटना को तो ऐसे लोग बिल्कुल भूल ही जाते हैं । ऐसे ही लोगों को भुलक्कड़ कहा जाता है ।

याददाश्त चली जाने का सबसे मुख्य कारण है सिर पर चोट का लगना । चोट लगने के कारण याद रखने में सहायता करने वाली मस्तिष्क की कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं । इसके अतिरिक्त किसी भारी सदमे, मिर्गी के दौरे, मस्तिष्क में हो गये फोड़े आदि के कारण भी याददाश्त चली जाती है ।

अनेक बार तो ऐसा भी देखा गया है कि याददाश्त पूरी तरह चले जाने के बावजूद भी उस व्यक्ति को उसके जीवन में घटी दो तीन घटनाएं टुकड़ों में याद रहती हैं।

याददाश्त पर एक बीमारी भी असर डालती है जिसे 'एलजाइमर रोग' कहा जाता है । इस रोग से ग्रस्त लोगों की याददाश्त कमजोर हो जाती है । कई बार तो ऐसा देखने में आया है कि कुछ देर पहले घटी घटना भी याद नहीं रहती है । अमरीका के पूर्व राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन इसी रोग के शिकार थे । किंतु इस रोग को कृत्रिम हारमोन द्वारा काफी हद तक नियंत्रित कर लिया जाता है । नोबेल पुरस्कार विजेता ब्रिटेन के वैज्ञानिक आर्थर मार्टिन भी 74 वर्ष की अवस्था में 'एलजाइमर रोग' से ग्रसित हो गये जिनको ठीक करने हेतु कई दवाओं का प्रयोग किया गया और टी.एच.ए. नामक दवा से तो वे ठीक भी हो गये ।

वैसे अभी भी याददाश्त को पूर्णतया लौटाने में वैज्ञानिकों ने पूर्णतः सफलता नहीं प्राप्त की है । चोट से जाने वाली याददाश्त को वापस लौटने की संभावना भी कम ही रहती है, क्योंकि चोट द्वारा नष्ट हुई कोशिकाओं का ठीक होना संभव नहीं हो पाता है । वैसे स्मृतिहीनता को पूर्णतया ठीक करने हेतु वैज्ञानिक प्रयासरत हैं एवं संभव है कि भविष्य में इस पर सफलता प्राप्त कर ली जाय ।

डॉ. गणेश कुमार पाठक
प्रतिभा प्रकाशन, बलिया-277 001 (उ. प्र.)

3. 'क्लोनिंग' से बना हमशक्ल

एडिनबर्ग स्थित रॉसलिन इंस्टीट्यूट में कार्यरत भ्रूण विज्ञानी डॉ. इआन बिलमुट ने जब 27 फरवरी 1997 को एक भेड़ से 'क्लोन' तैयार करने में सफलता की खबर दी थी, तो इसने संपूर्ण विश्व के वैज्ञानिकों, आचार शास्त्रियों एवं धर्माचार्यों सहित आम जनमानस में तहलका मचा दिया था । उल्लेखनीय है कि डॉ. बिलमुट ने भेड़ की एकल कोशिका से "डॉली" नामक मेमना तैयार करके प्रजनन प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक नये आयाम को जोड़ा था । अभी यह खबर चर्चा का विषय बनी ही हुई थी कि तभी एक और खबर फैली कि अमरीका के आरेगन इंस्टीट्यूट में बंदरों की क्लोनिंग से दो बंदरों का जन्म हुआ है । यह घटना मार्च 1997 में घटी । इधर चीन ने भी यह दावा किया है कि उसके वैज्ञानिकों ने चूहों से 'क्लोन' तैयार करने में सफलता प्राप्त कर ली है । इतना ही नहीं 'संडे टाइम्स' में तो यह भी खबर छप गयी कि वैज्ञानिकों ने 'मानव क्लोन' भी तैयार कर लिया है । किंतु इस प्रयोगशाला से जुड़े बेल्जियम के डॉ. राबर्ट शोयस्मान ने इस खबर का खंडन किया है । लेकिन यह तो निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि प्रयोगशाला में क्लोनिंग द्वारा पशुओं के हमशक्ल पैदा करने की सफलता ने मानव के भी

क्लोन (हमशक्ल) उत्पन्न करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है ।

क्लोनिंग शब्द क्लोन (Clone) से बना है और यह क्लोन शब्द ग्रीक भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है टहनी यानी ट्विग (Twig) । एक वृक्ष की शाखाएं जैसे समान होती हैं, वैसे ही क्लोन्स भी समान होते हैं । क्लोन एक जीवधारी है जो एक अकेले जनक से गैर लैंगिक विधियों से उत्पन्न होता है । भौतिक एवं अनुवांशिक रूप से यह अपने जनक के बिल्कुल समरूप होता है ।

क्लोनिंग तकनीक कोई नयी तकनीक नही है । एवं बागवानी के क्षेत्र में क्लोनिंग प्रचीन काल से ही प्रचलित है । वास्तव में कलम लगाने को क्लोनिंग का ही रूप माना जाता है । कलम लगाने में एक अच्छे पुष्ट पौधे की शाखाओं के छोटे-छोटे टुकड़ों को जमीन में रोपा जाता है और प्रत्येक टुकड़े से तैयार वयस्क पौधा अपनी अनुवांशिक रूपरेखा में मातृ पौधे के समान गुण धर्म वाला ही होता है । अलैंगिक जनन द्वारा एक जीव से पूर्णतः समरूप अनुवांशिक खाके के दूसरे जीव की उत्पत्ति को ही क्लोंनिंग कहा जाता है और इस विधि से उत्पन्न नये जीव को 'क्लोन' कहा जाता है ।

'डॉली' का जन्म :

डॉ. बिलमुट ने अपने सहयोगियों के साथ सर्वप्रथम एक वयस्क गर्भवती भेड़ के थन से कुछ कोशिकाओं को अलग कर उन्हें प्रयोगशाला में पेट्री प्लेट्स में पोषक तत्त्वों के सहारे विकसित करना प्रारंभ किया । धीरे-धीरे उनके पोषक तत्त्वों की मात्रा में कमी लाते रहे और अतंतः इन पोषक तत्त्वों की कमी से इन कोशिकाओं की वृद्धि रुक गयी । इस तरह वैज्ञानिकों ने उस मादा भेड़ के थन से एकक कोशिका एवं कोशिका से अनुवांशिक द्रव्य डी. एन. ए. को निकालकर कोशिका के विभाजन पर रोक लगा दी ।

प्रयोग के दूसरे चरण में वैज्ञानिकों ने एक अन्य मादा भेड़ से एक अनिषेचित अंडाणु निकाल कर उससे उसका केंद्रक अलग कर दिया । इस तरह एक ऐसा अंडाणु ही शेष रह गया, जिसमें कोशिका द्रव्य या साइटोप्लाज्म तो विद्यमान था किंतु केंद्रक नहीं था । इसके बाद वैज्ञानिकों ने पोषक माध्यम में पड़ी उस कोशिका के केंद्रक को केंद्रक-रहित अंडाणु के साथ क्षीण विद्युत तरंगों से संलयन कराया । अंडाणु के वयस्क कोशिका के केंद्रक से संलयन करते ही संलयित कोशिका में जैव रासायनिक प्रक्रियाएं शुरू हो गयीं एवं कोशिका का विभाजन भी प्रारंभ हो गया । इस तरह पेट्री प्लेट्स में एक भ्रूण की रचना हुई जिसे एक तीसरी भेड़ के गर्भाशय में प्रत्यारोपित कर दिया गया । गर्भ अवधि पूर्ण होने पर इस भेड़ ने जिस मेमने को जन्म दिया उसे 'डॉली' नाम दिया गया ।

'डॉली' अनुवांशिक दृष्टि से अपनी मूल मां (जिस वयस्क भेड़ के थन से कोशिका प्राप्त की गयी थी) की प्रतिकृति (कार्बन कॉपी) थी । अर्थात डॉली अपनी कोशिका दाता माँ की हूबहू नकल है और इसे ही वैज्ञानिक भाषा में "क्लोन" कहा जाता है ।

क्लोनिंग के संभावित अनुप्रयोग :

विस्कांसिन विश्वविद्यालय के प्रजनन विज्ञान एवं जंतु जैव प्रौद्योगिकी विभाग के प्रोफेसर नील फर्स्ट भी पशुधन (गाय, भेड़, भैंस आदि) की क्लोनिंग करने में लगे हुए हैं । उनका कहना है कि डेयरी पशुओं की क्लोनिंग क्षमता विकसित हो जाने पर उसका व्यापक प्रभाव उद्योगों पर देखने को मिलेगा । अब अधिक से अधिक दूध देने वाली गायों का क्लोन तैयार कर डेयरी उद्योग को बढ़ावा मिलेगा । इसी तरह उत्तम किस्म की एवं पर्याप्त ऊन प्रदान करने वाली भेड़ों का क्लोन तैयार कर ऊन उद्योग को विकसित किया जा सकता है ।

वयस्क स्तनधारी जीवों को क्लोन कर सकने की सफलता ने हमारे सक्षम संभावनाओं के द्वार खोल दिये हैं । अब वैज्ञानिक ऐसी जंतु प्रजातियों का क्लोन तैयार कर सकते हैं जिनके विलुप्त होने का खतरा बढ़ गया है । यही नहीं, अंग प्रत्यारोपण की आवश्यकता वाले लोगों के लिए प्रत्यारोपणशील अंगों के उत्पादन हेतु भी यह तकनीकी लाभदायक सिद्ध होगी । कृषि क्षेत्र में भी

इस तकनीकी से लाभ उठाया जा सकता है ।

यही नहीं क्लोनिंग का तात्कालिक व्यवहारिक प्रयोग वृद्धावस्था, कैंसर एवं अनुवांशिक क्षेत्र में शोध के लिए भी किया जा सकता है । वैज्ञानिकों को विश्वास है कि क्लोनिंग तकनीकी में अनुवांशिक अभियांत्रिकी को और अधिक कारगर बनाने की संभावनाएं विद्यमान हैं ।

क्या मानव का क्लोन संभव है ?

जहां तक मानव का क्लोन बनाये जाने का प्रश्न है तो सिद्धांततः इसका उत्तर हां में दिया जा सकता है । क्योंकि भेड़, बंदर एवं आदमी तीनों स्तनधारी वर्ग के प्राणी हैं तथा एक प्रजाति के क्लोन तैयार करने में प्रयोग की गयी तकनीकी को सिद्धांततः दूसरी प्रजाति के क्लोन तैयार करने में भी प्रयोग किया जा सकता है ।

किंतु बिलमुट ने 12 मार्च 1997 को वाशिंगटन में एक पत्रकार वार्ता में कहा था कि मानव की प्रतिकृति तैयार करने के प्रयास में विकलांग प्रतिकृतियों का निर्माण हो सकता है जो मानवता के प्रति अपराध होगा । उनके अनुसार मृत व्यक्तियों की संचित कोशिकाओं के माध्यम से मानव प्रतिकृति विकसित करना संभव नहीं है ।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के महानिदेशक हिरोशी नकाजिमा ने मानव की प्रतिकृति के निर्माण को नैतिकता की दृष्टि से अस्वीकार करते हुए यह भी कहा था कि इस दिशा में शोध कार्य अन्य अनेक दृष्टियों से मनुष्य के हित में है अतः इसे जारी रखा जाना चाहिए ।

यूरोपीय संसद द्वारा भी मानव क्लोनिंग की दिशा में किये जाने वाले किसी भी प्रयास को कठोरता से प्रतिबंधित करने का प्रस्ताव किया गया है । 12 मार्च 1997 को स्ट्रासबर्ग में संपन्न हुई यूरोपीय संघ की संसदीय बैठक में पारित प्रस्ताव में कहा गया था कि मानव क्लोनिंग की दिशा में प्रायोगिक स्तर पर किया जाने वाला भी कोई प्रयास समाज को स्वीकार नहीं होगा । संयुक्त राज्य अमरीका, मलेशिया, इंडोनेशिया सहित अन्य देशों ने मानव क्लोनिंग पर प्रतिबंध लगा दिया है ।

क्लोनिंग - विवादों के घेरों में :

पत्र-पत्रिकाओं में खासतौर से कौमार्य, प्रसव, मृदों को जीवन एवं औरतों द्वारा खुद अपने ही क्लोन तैयार करने संबंधी संभावनाओं पर गंभीरता से बहस जारी है । न्यूयार्क से प्रकाशित होने वाले 'टाइम' अखबार के मुखपृष्ठ पर सेंट लुइस, मिसौरी स्थित वाशिंगटन विश्वविद्यालय की कोशिका विज्ञानी अर्सुला गुडेनो के हवाले से एक व्यंग्य छपा कि क्लोनिंग तकनीकी में सिद्धता प्राप्त कर लेने के बाद पुरुषों की आवश्यकता नहीं रह जायेगी । यह भी कहा जा रहा है कि क्लोनिंग के सफल हो जाने पर मां-बाप अपने बच्चों को महज उत्पाद मानने लगेंगे । मानवीय संवेदनाओं का अंत हो जायेगा । विश्व के अनेक धर्मशास्त्रियों द्वारा भी मानव क्लोनिंग को लेकर तरह-तरह की शंकाएं व्यक्त की गयी हैं एवं इसका विरोध किया गया है । पारसी, ईसाई, इस्लाम, हिंदू, बौद्ध आदि सभी धर्मशास्त्रियों ने इसका विरोध किया है । बहरहाल इस विषय पर तरह-तरह के प्रयोग जारी हैं । उपरोक्त प्रतिबंधों के बावजूद मानव क्लोन पर प्रयोग करने की कुछ घोषणाएं भी की जा चुकी हैं ।

डॉ. गणेश कुमार पाठक
प्रतिभा प्रकाशन, बलिया-277 001 (उ. प्र.)

4. लद्दाख में पौष्टिक तत्त्वों से भरपूर जड़ वाली सब्जियाँ

लद्दाख जम्मू-कश्मीर राज्य के 70 प्रतिशत उत्तरी भाग को घेरे हुए है । यहां के अधिकतर गांव समुद्र तल से 3000 - 4500 मीटर की ऊँचाई पर अनेकों घाटियों में बसे हुए हैं । इन घाटियों में खेती के लिए लगभग 1500 हेक्टेअर भूमि ही उपलब्ध है । यहां की जनसंख्या बेहद कम है तथा जनसंख्या का 90 प्रतिशत हिस्सा मुख्यतया कृषि पर निर्भर है । लद्दाख में दिन व रात्रि के तापमान एक मौसम से दूसरे मौसम के तापमान एवं एक स्थान से दूसरे स्थान के मौसम में अत्यधिक भिन्नता पायी जाती है । लद्दाख दो जनपदों लेह एवं कारगिल में विभाजित है । सर्दियों में लेह तथा कारगिल (द्रास) का न्यूनतम

तालिका : पौष्टिक तत्त्व (प्रति 100 ग्राम खाद्य पदार्थ में)

सब्जियों के नाम	कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	प्रोटीन (ग्राम)	विटामिन ए (माग्रा.)	विटामिन बी (मिग्रा.)	विटामिन सी (मिग्रा.)	खनिज पदार्थ कैल्शियम (मिग्रा.)	खनिज पदार्थ फास्फोरस (मिग्रा.)	खनिज पदार्थ लोहा (मिग्रा.)	खनिज पदार्थ पोटाश (मिग्रा.)
शलजम की पत्तियां	5.0	3.0	3800.00	0.60	139.00	246.0	56.0	1.80	-
मूली की पत्तियां	3.8	3.0	3350.00	0.19	103.00	290.0	50.0	3.60	-
गाजर	10.7	0.9	1000-2150	0.12	3-6	80.0	530.0	2.20	108.0
मूली	4.2	0.7	2.50	0.08	15.00	50.0	30.0	0.70	130.0
शलजम	6.2	0.5	-	0.08	43.0	30.0	40.0	0.4	-

तापमान -30 डिग्री सेल्सियस तथा द्रास का न्यूनतम तापमान -50 डिग्री सेल्सियस तक चल जाता है। द्रास को विश्व का सबसे ठंडा दूसरा रेगिस्तान बताया जाता है। यह क्षेत्र दुर्गम होने के कारण अत्यंत पिछड़ा हुआ है।

हमारे दैनिक भोजन में पौष्टिक तत्त्वों की भरपाई के लिए साग-सब्जियों का होना अति आवश्यक है। इसके मद्देनजर साग सब्जियों वाली फसलों में जड़ वाली सब्जियों का मुख्य स्थान है। इन जड़ वाली सब्जियों में गाजर (ड्योकस कैरोटा), मूली (रैफेनस सटाइवस) तथा शलजम (ब्रैसिका रैपा) इत्यादि का विशेष स्थान है। लद्दाख में इन सभी जड़ वाली सब्जियों की खेती सफलता पूर्वक एवं बड़े पैमाने पर की जाती है। इन जड़ वाली सब्जियों का प्रयोग सब्जी, सलाद व अचार इत्यादि बनाने में किया जाता है। लद्दाखी लोगों द्वारा तैयार किया गाजर का अचार यहां पर बड़ी मात्रा में पसंद किया जाता है। मूली व शलजम द्वारा तैयार किया गया मुमोक (लोकल डिश) लद्दाख के प्रत्येक घर में बड़े चाव के साथ खाया जाता है। पोषक तत्त्वों की दृष्टि से इन सभी जड़ वाली सब्जियों का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है (देखें तालिका)।

इस प्रकार उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है, कि जड़ वाली सब्जियाँ विशेषकर गाजर, मूली व शलजम का हमारे दैनिक भोजन में पौष्टिक तत्त्वों की पूर्ति के लिए महत्वपूर्ण स्थान है।

लद्दाख की जलवायु गाजर, मूली तथा शलजम सभी ठंडी जलवायु को चाहने वाली फसलें अनुकूल हैं। तापमान से जड़ों का रंग, खुशबू तथा उनका विकास विशेष रुप से प्रभावित होता है।

यहां की भूमि इन सब्जियों के लिए उपयुक्त है। यूं तो ये जड़ वाली सब्जियां हर प्रकार की भूमि में उगायी जा सकती हैं किंतु गहरी, भुरभुरी और ढीली दोमट मिट्टी इनकी खेती के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है। भूमि में जीवांश पदार्थ की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए।

खेत की पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें। इसके बाद दो-तीन जुताईयां देशी हल से करनी चाहिए। ध्यान रहे, प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगायें, इससे मिट्टी में नमी धारण करने की क्षमता बनी रहेगी तथा मिट्टी भुरभुरी भी हो जायेगी।

इन सब्जियों की उन्नत किस्में, यथा- नैन्टिस तथा पूसा यमदाग्नि (गाजर), लोकल, पूसा हिमानी तथा दुर्गा (मूली), पर्पिल टॉप बहाइट ग्लोब, पूसा चंद्रिमा, पूसा स्वर्णिमा तथा लोकल (शलजम) लद्दाख की जलवायु के अंतर्गत बहुत अच्छी पैदावार दे रही हैं तथा इन किस्मों

के ऊपर कीट-पतंगों का आक्रमण भी सामान्यतया बहुत कम होता है।

उर्वरकों की सही मात्रा ज्ञात करने के लिए मिट्टी की जांच कराना अति आवश्यक है। किंतु साधारण भूमि में 200-250 कुंतल गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद, 60 किग्रा. नाइट्रोजन, 30 किग्रा. फास्फोरस तथा पोटाश की मात्रा बहुत कम प्रति हैक्टेअर की दर से देना चाहिए। क्योंकि लद्दाख की भूमियां पोटाश के मामले में अधिक धनी पायी गयी हैं।

खेत की तैयारी करते समय गोबर की खाद खेत में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए, तथा खेत की अंतिम जुताई के समय नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा भूमि में भली-भांति मिला देनी चाहिए।

इनकी बुबाई के लिए मई का प्रथम एवं द्वितीय सप्ताह उपयुक्त रहता है।

गाजर के लिए 7-8 किग्रा. बीज, मूली के लिए 10-12 किग्रा. बीज तथा शलजम के लिए 3-4 किग्रा. बीज प्रति हैक्टेअर की दर से पर्याप्त रहता है।

गाजर, मूली व शलजम की बुआई 30 सेमी. की दूरी पर समतल भूमि में 2-3 सेमी. की गहराई में करनी चाहिए, बाद में हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। बीजों के अच्छी तरह से अंकुरण हो जाने के पश्चात सावधानी पूर्वक छंटाई करके पौधे से पौधे की दूरी 8-10 सेमी. कर देनी चाहिए, चूंकि शलजम का बीज बारीक होता है, अतः उसमें 1:4 के अनुपात में राख मिलाकर बुआई करें।

इन फसलों से अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए खेत में नमी बनाये रखना अत्यंत आवश्यक है। चूंकि पानी के अभाव में इनकी जड़ें सख्त होने का भय रहता है। अतः 8-10 दिन के अंतराल पर आवश्यकता अनुसार सिंचाई करते रहना चाहिए तथा सिंचाई सदैव हल्की करनी चाहिए।

समय-समय पर वृद्धि करती हुई जड़ों पर मिट्टी चढ़ाते रहना चाहिए, ऐसा करने से जड़ों का रंग व स्वाद खराब नहीं होता है। भूमि को ढीला, उचित वायु संचार बनाये रखने तथा खरपतवारों के आक्रमण से फसल को मुक्त रखने के लिए प्रारंभिक अवस्था से ही निराई-गुड़ाई करते रहना चाहिए, सामान्यतया 2-3 निराई-गुड़ाई पर्याप्त होती हैं।

गाजर की औसतन उपज 250-300 कुंतल, मूली की औसतन उपज 250-275 कुंतल तथा शलजम की औसतन उपज 190-200 कुंतल प्रति हैक्टेअर तक हो जाती है।

लद्दाख में फसलों के ऊपर कीट-पतंगों का प्रकोप व रोग-व्याधियाँ अपेक्षाकृत भारत के दूसरे हिस्सों के बहुत कम होती हैं। फिर भी माहू (एफिड) कीट सभी जड़ वाली फसलों को अत्यधिक नुकसान पहुंचाता है, इसकी समुचित रोकथाम के लिए 0.1 प्रतिशत नुवान के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

सफेद चूर्णी बीमारी के लक्षण पत्तियों पर सफेद गोलाकार धब्बों द्वारा प्रकट होते हैं, इसकी बेहतर रोकथाम के लिए 3 किलोग्राम सल्फर का प्रति हैक्टेअर की दर से छिड़काव करें।

5. लद्दाख में पत्तागोभी की वैज्ञानिक खेती

लद्दाख में उगाई जाने वाली सब्जियों में पत्ता गोभी (ब्रैसिका ओलेरेसिया वर-कैपीटाटा) का विशेष स्थान है। यह गर्मी के मौसम में सामान्य रूप से उपलब्ध होने वाली सब्जी है। तथा पोषक तत्त्वों की दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण सब्जी है। इस के 100 ग्राम भोज्य पदार्थ के सेवन से विटामिन-ए-400 अंतर्राष्ट्रीय यूनिट, विटामिन-बी, 27 अंतर्राष्ट्रीय यूनिट, विटामिन-सी, 100 मिलीग्राम मिलते है। इसकी सुकोमल पत्तियों का उपयोग सलाद व सब्जी दोनों ही रूप में किया जाता है। लद्दाखी लोग इसकी पत्तियों का अचार भी बनाते हैं जो अत्यंत स्वादिष्ट होता है व इस क्षेत्र में बड़े पैमाने पर पसंद किया जाता है।

पत्तागोभी की खेती हल्की से भारी सभी प्रकार की भूमियों में सरलता पूर्वक की जा सकती है। इस क्षेत्र में पायी जाने वाली सभी प्रकार की भूमि पत्तागोभी की कृषि के लिए उपयुक्त पायी गयी है। लद्दाख में इसकी वैज्ञानिक खेती के लिए नीचे बताये गये तौर-तरीकों को भली-भांति अपनायें।

उन्नत प्रजातियां : क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों द्वारा पत्तागोभी की दो संकर प्रजातियां विकसित की गयी हैं, जिनसे ज्यादा से ज्यादा पैदावार मिलती है :

1) एफ. आर. एल. हाइब्रिड-1 : इस प्रजाति की गांठें बड़ी, गोलाकार तथा करीब 10-12 किग्रा. के वजन की होती हैं। यह प्रजाति रोपने के 75-80 दिन बाद तैयार हो जाती है। इसकी गाठें काफी लंबे समय तक सुकोमल व स्वादिष्ट बनी रहती हैं। यह प्रजाति गोलडन एकड़ X अर्ली ड्रम हैड से तैयार की गयी है।

2. एफ. आर. एल. हाइब्रिड-2 : यह प्रजाति अर्ली ड्रम हैड X गोलडन एकड़ से तैयार की गयी है। इस प्रजाति की गांठें मध्यम, अंडाकार तथा करीब 8-10 किग्रा. के वजन की होती हैं। यह प्रजाति भी रोपने के 75-80 दिन में ही तैयार हो जाती है।

इसकी खेती के लिए खाद एवं उर्वरक की मात्रा भूमि की किस्म और उसमें उपलब्ध पोषक तत्त्वों की मात्रा पर निर्भर करती है अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद 10 टन प्रति हैक्टर के हिसाब से अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए।

फॉस्फोरस 50 किग्रा. तथा पोटॉश 40 किग्रा. एवं नाइट्रोजन 80 किग्रा. प्रति हैक्टेअर पर्याप्त रहता है। फॉस्फोरस व पोटॉश की पूरी मात्रा खेत तैयार करते समय और नाइट्रोजन की मात्रा तीन बराबर भागों में विभाजित कर पहली खेत तैयार करते समय, दूसरी पौध रोपाई के 30 दिन बाद एवं तीसरी गांठ बनते समय डालें।

लद्दाख में इसकी बीजाई नर्सरी में अप्रैल के अंतिम और मई के प्रथम सप्ताह में की जाती है। करीब 200-250 ग्राम बीज द्वारा तैयार की गयी नर्सरी एक हैक्टेअर क्षेत्रफल की रोपाई के लिए पर्याप्त होती है। बीजाई के 35-40 दिन बाद पौध रोपाई के लिए तैयार हो जाती है। पत्तागोभी की फसल में कतारे से कतार की दूरी 45-50 सेमी. तथा पौधे से पौधे की दूरी भी 45-50 सेमी. रखते हैं।

पत्तागोभी में पहली सिंचाई पौध रोपाई के तुरंत बाद की जाती है। पहली सिंचाई के करीब 15 दिन के अंतराल पर आवश्यकता अनुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। लेकिन यह ध्यान रहना चाहिए कि पत्तागोभी में गांठ बनने के उपरांत ज्यादा पानी नहीं देना चाहिए अर्थात उस समय केवल आवश्यकतानुसार हल्की सिंचाई करें।

प्रारंभ में हल्की गुड़ाई खरपतवारों को नष्ट करने के लिए तथा मिट्टी को भुरभुरा बनाने के लिए आवश्यक है। लगभग 5-6 सप्ताह बाद पौधों पर मिट्टी अवश्य चढ़ायें ताकि गांठ अच्छी बनें।

जब गाँठ उचित आकार की बन जायें तथा सख्त हो जायें, तब यह अवस्था कटाई के लिए सर्वोत्तम है। पत्तागोभी की गांठ ढीला होने से पहले ही पहले कटाई कार्य पूरा कर लेना चाहिए।

एफ. आर. एल. हाइब्रिड-1 की औसत उपज 1300-1400 कुंतल प्रति हैक्टर तथा एफ. आर. एल. हाइब्रिड-2 औसत उपज 1000-1200 कुंतल प्रति हैक्टर प्राप्त होती है।

6. प्राणी जगत के लिए हानिकारक मदकारी पौधा : भांग

भांग की उत्पत्ति की कहानी बड़ी रोचक है, किवंदंती के अनुसार सागर-मंथन के समय चौदह रत्नों की उत्पत्ति के साथ इस पौधे की भी उत्पत्ति हुई थी। स्वयं देवताओं के राजा इंद्र को प्रिय लगी। लोगों के कल्याण के लिए पृथ्वी पर लायी गयी। इसके सेवन से निरोगी काया प्राप्त होती हैं और मन प्रफुल्लित रहता है।

भांग के नाम पर ही भंगा कुल 'कैनाविनासी' बना है और इस कुल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सदस्या भी यही है। लेटिन भाषा में इसे "कैनाविस सटाइवा" लिन-कहते हैं। अंग्रेजी में इसे इंडियन हैंप के नाम से जाना जाता है। इसे हिंदी, मराठी व गुजरातीमें भांग, बंगला में भांग सिद्धी तथा फारसी-अरबी में किन्नव नाम से पुकारते हैं।

भांग का पौधा मध्यम आकार का होता है, इसके नर व मादा पौधे अलग-अलग होते हैं। मादा पौधों की ऊंचाई नर पौधों की अपेक्षाकृत अधिक होती है, जिसके परिणाम स्वरूप नर व मादा पौधों को आसानी से पहचाना जा सकता है। इसके पौधे की पत्तियों की बनावट कंगूरेदार

अर्थात किनारे कटे होते हैं। पत्तियों का उर्ध्व पृष्ठ सहरा हरा तथा अधोपृष्ठ हल्के रंग का मुलायम रोयें युक्त होता है। ऊंचाई, पत्तियों की बनावट व रूप रंग में भांग का पौधा समानता में सर्वाधिक गेंदे (मैरीगोल्ड) के पौधे से मेल खाता है। इसी कारण से शौकीन लोग इक्का-दुक्का पौधे पुष्प वाटिका में गेंदे के साथ उगाते हैं, ताकि किसी की नजर भांग के पौधों पर एकदम न पड़ सके।

भांग के पौधे में राल कैनाविनोल, टैट्राहाइड्रो कैनाविनोल और कैनाबिनोलिक एसिड नामक पदार्थ, उड़नशील तेल, वसा, शर्करा, मोम तथा पोटेसियम नाइट्रेट पाये जाते हैं। चरस की पत्तियों व शाखाओं में राल की मात्रा 22-23 व 7.25 से 3.25 प्रतिशत तक होती है। शोध कर्ताओं का कहना है कि इसमें सब मिलाकर लगभग 400 रसायन होते हैं।

यह बहुत कम लोग ही जानते हैं कि गांजा (मेरिजुआना), चरस (हशीश) और भांग सब एक ही पौधे के अलग-अलग रूप हैं। किंतु सत्यता केवल यह है कि सभी नशीली वस्तुएं हैं और उनके विविध प्रयोग हैं। तथा ये उत्पाद कई तरीकों से प्रयोग किये जाते हैं। भांग के उत्पादों का विस्तार से वर्णन निम्न प्रकार है :-

गांजा : इसे मेरिजुआना के नाम से भी जाना जाता है। भांग के पौधे के ऊपरी फूल वाले हिस्से और रेजिन में भीगी पत्तियों को सुखाकर गांजा बनाया जाता है। मादा पौधे की रालयुक्त पुष्पमंजरी को गांजा कहते हैं। इसका रंग हरा भूरा, स्लेटी हरा होता है। इसमें एक प्रकार की गंध पायी जाती है। इसे प्रायः तंबाकू में मिलाकर चिलम, सिगरेट या बीड़ी में भरकर पिया जाता है।

चरस : हमारे देश के अन्य भागों में इसे हशीश के नाम से भी पुकारा जाता है। चरस 6-8 हजार फीट ऊंचाई पर उगने वाले भांग के मादा पौधों के विशुद्ध रेजिन को सुखाकर तैयार की जाती है। इसका रंग भूरा या काला होता है।

गांजे की तुलना में चरस दस गुना तेज होती है। इस प्रकार 'चरस' मादा पौधे के पत्तों और शाखाओं पर जमें रालयुक्त निर्यास का नाम है।

भांग : भांग के पौधे के पत्ते, पुष्प व फलयुक्त शाखाओं का मिश्रण भांग कहलाता है। नर पौधा मोटा व मादा पौधा बड़ा होता है। दोनों की पत्तियों की ऊपरी सतह गहरी हरी होती है तथा निचली सतह हल्की हरी होती है, पौधों की औसतन ऊंचाई एक से डेढ़ मीटर तक होती है और इसकी ऊपर की पत्तियों व फलों पर लिसलिसा पदार्थ चिपका रहता है।

इनमें सबसे खतरनाक रसायन टेट्राहाइड्रो कैनाविनोल है। यह रसायन शरीर में जाकर टिकता है तथा लगभग दस दिनों तक टिका रहता है। यदि दसवें दिन शरीर का परीक्षण करायें, तो शरीर में अवश्य ही इसके कुछ अंश मिल जायेंगे। यह रसायन की मात्रा क्रमशः गांजे में 3 से 4 प्रतिशत, व चरस में 10 से 20 प्रतिशत तक पायी जाती है। यही मस्तिष्क, अंडाशयों, डिंबाशयों और अन्य कोशिकाओं में पड़ाव डालता है। जिससे परिणाम स्वरूप शरीर के ये समस्त अंग धीरे-धीरे विकृत हो जाते हैं। बालकों व महिलाओं में, प्रमुख रूप से, गर्भवती महिलाओं के लिए इसका सेवन बहुत ही गंभीर होता है। गांजा के सेवन से पुरुषों में पुरुषत्व हीनता व स्त्रियों में बांझपन उत्पन्न होता है। इस प्रकार भांग का पौधा सचमुच प्राणी जगत के लिए बहुत हानिकारक होता है।

सुरेंद्र सिंह
सब्जी विज्ञान विभाग, क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला,
(डी. आर. डी. ओ.) लेह-लद्दाख -194101

7. ओजोन-क्षरण से पृथ्वी के विनाश का खतरा

हम 21 वीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं। इतनी सदियों में हम पृथ्वीवासियों ने काफी भौतिक सुख-साधन जुटा लिया है। वैज्ञानिक उपलब्धियों के अनेकों संस्करण बन गये हैं लेकिन हमने बहुत कुछ खोया भी है। प्रकृति से हमारा संबंध बिगड़ चुका है। कारों, बसों, ट्रकों और विशाल कारखानों के जाल से निकली जहरीली गैसों ने प्रकृति के वायुमंडल को काफी प्रदूषित कर दिया है. चिमनियों से निकला कार्बन मोनो ऑक्साइड हमारे रक्त के ह्यूमोग्लोबिन से मिल कर कार्बक्सी ह्यूमोग्लोबिन बनाता है जो रक्त का ऑक्सीजन कम करके हमें एनीमिक बना रहा है। कार्बन मोनो ऑक्साइड, कार्बन डाई ऑक्साइड,

नाइट्रस ऑक्साइड, मीथेन, क्लोरोफ्लोरोकार्बन - 11 (CFCI3) और क्लोरोफ्लोरोकार्बन- 12(CF2 CI2) जो हमने वायुमंडल में झोंका है, सबने मिलकर पृथ्वी वासियों को खांसी, फेफड़े की बीमारी, आंखों में खुजली, चर्मरोग, श्वास की बीमारी के साथ जीने के लिए मजबूर किया है। इन गैसों की शरारत यहीं तक सीमित नहीं है, ये वायुमंडल की जीवनदायिनी ऑक्सीजन कम कर रही हैं, और स्ट्रेटोस्फीयर में पहुंच कर सूर्य की ओर से उतरती पर खतरनाक पराबैगनी किरणों को पृथ्वी पर उतारने के लिए ओजोन की 48 किलोमीटर मोटी पर्त के सुरक्षा कवच को नष्ट कर रही हैं। ओजोन की यह सुरक्षा-कवच पराबैगनी किरणों को पृथ्वी से 80 किलोमीटर ऊंचाई पर ही रोक देती है, और हमें मृत्यु से बचाती है। अब तक हम पृथ्वीवासी 20,000,000 मैट्रिक टन से भी ज्यादा ओजोन क्षरण वाली गैस स्ट्रेटोस्फीयर में फेंक चुके हैं। भौतिक सुख सुविधा के लिए इन गैसों को फेकने का सिलसिला जारी है और ओजोन क्षरण करते-करते हम ऐसे मुकाम पर पहुंचे हैं जब अर्जेंटिना, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा डेनमार्क में पराबैगनी किरणों के उतरने की संभावना व्यक्त की जाने लगी है, त्वचा कैंसर के मरीजों की संख्या बढ़ने लगी है, अंधेपन का रोग बढ़ने लगा है। पराबैगनी किरणों के उतरने पर धूप का चश्मा भी बेकार हो जाता है क्योंकि चश्मे के गहरे रंग के कारण आंख की पुतली अधिक चौड़ी हो जाती है और हमारी रेटिना तक ज्यादा पराबैगनी किरणें पहुंच कर अंधा बना देने का प्रयास करती हैं। वाइड स्पेक्ट्रम सनस्क्रीन ग्लास लगाये बिना इनसे बचाव संभव नहीं है। त्वचा कैंसर से बचने के लिए धूप में निकलने पर सुरक्षा कवच पहनना अपरिहार्य है।

पृथ्वी के वायुमंडल की ओजोन को निरंतर पराबैगनी किरणें भी नष्ट करने का प्रयास करती हैं। उनके ओजोन पर पड़ते ही ओजोन ऑक्सीजन अणु तथा स्वतंत्र ऑक्सीजन परमाणु में विभक्त हो जाता है किंतु प्रकृति की व्यवस्था के अनुसार ये पुन: मिल कर ओजोन बना लेते हैं। जहरीली गैसें जो हम ऊपर फेंक रहे हैं पुन: मिलन की प्रक्रिया को रोकने का कार्य करती है, स्वतंत्र ऑक्सीजन परमाणु को ये 'स्वतंत्र' नहीं रहने देती और क्लोरोमोनो ऑक्साइड जैसे पदार्थ बना देती है। स्वतंत्र ऑक्सीजन परमाणु की उपलब्धता कम होने पर ओजोन का क्षरण होता है और यह कार्य जहरीली गैसें अत्यंत तन्मयता से कर रही हैं। धीरे-धीरे यदि संपूर्ण ओजोन नष्ट हो जाये और स्वच्छदंता से पैराबैगनी किरणें सूर्य से पृथ्वी पर उतर आयें तो पृथ्वी का विनाश रोकना संभव नहीं है और पृथ्वी भी अन्य ग्रहों की भांति वीरान हो जायेगी। अब तक की वैज्ञानिक उपलब्धि ने हमें इतने खतरनाक मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है।

अब हमारे पास दो रास्ते हैं, या तो जहरीली गैसों को तुरंत वायुमंडल में फेंकना बंद करके जंगल बढ़ाकर ऑक्सीजन की कमी पूरी करें और ओजोन क्षरण रोंके या अपने भौतिक सुख साधनों के लिए अंधे होकर इसी प्रकार कारें, बसें, ट्रकें और फैक्ट्रियां चलाकर जहरीली गैसें वायुमंडल में फेंककर पर्यावरण प्रदूषित करके और ओजोन-क्षरण करके मृत्यु का आवाहन करें।

8. विद्युत आपूर्ति का वैकल्पिक स्रोत-बैटरी इन्वर्टर

विद्युत आपूर्ति ठप होते ही हमारे घर के बल्ब बुझ जाते हैं और पंखे बंद हो जाते हैं। इस परेशानी से बचने के लिए विद्युत उपभोक्ता अपने घरों में बैटरी इन्वर्टर लगाने लगे है। इन्वर्टर बैटरी के 12 वोल्ट डीसी को 230 वोल्ट एसी में परिवर्तित करके विद्युत आपूर्ति चालू कर देता है। इन्वर्टर में एसी विद्युत धारा को 50 चक्र प्रति सेकंड आवृत्ति का करने की भी व्यवस्था रहती है।

इन्वर्टर के साथ लेड एसिड बैटरी जुड़ी रहती है। इस बैटरी में एसिड (H_2SO_4) इलेक्ट्रोलाइट का काम करता है। इसके अतिरिक्त लेड आक्साइड (PbO_2) का बना धन इलेक्ट्रोड और लेड (Pb) का बना ऋण इलेक्ट्रोड होता है।

जब इन्वर्टर बैटरी से बिजली लेकर 230 वोल्ट एसी में परिवर्तित करके विद्युत आपूर्ति करने लगता है तो बैटरी के H_2SO_4 का SO_4 आयन धन इलेक्ट्रोड की ओर जाकर निम्नांकित रासायनिक अभिक्रिया करता है। जिससे एसिड पानी में परिवर्तित होने लगता है।

$$PbO_2+H_2SO_4 \rightarrow PbSO_4+H_2O+O$$

और SO_4 आयन ऋण इलेक्ट्रोड की ओर जाकर निम्नांकित रासायनिक अभिक्रिया करता है।

$$Pb+H_2SO_4 \text{ --> } PbSO_4+ 2H$$

विद्युत आपूर्ति सामान्य हो जाने पर इन्वर्टर बैटरी की चार्जिंग शुरू कर देता है। चार्जिंग शुरू करते ही जो रासायनिक अभिक्रिया होने लगती है वह इस प्रकार है। धन इलेक्ट्रोड पर

$$PbSO_4 + H_2O + O \text{ --> } PbO_2+H_2SO_4$$

और ऋण इलेक्ट्रोड पर

$$PbSO_4 + 2H \text{ --> } Pb+H_2SO_4$$

यानी इलेक्ट्रोड और एसिड अपने मूल रूप में आकर पुनः विद्युत धारा प्रदान करने के लिए चुस्त हो जाते हैं।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि बैटरी के डिसचार्ज और चार्जिंग के समय विपरीत रासायनिक अभिक्रियाएं होती हैं। इसलिए विद्युत आपूर्ति सामान्य हो जाने पर भी इन्वर्टर एक मिनट इंतजार करके बैटरी की चार्जिंग शुरू करता है। विलंब का यह समय देने के लिए इन्वर्टर के आई. सी. (integrated circuit) में टाइमर लगा होता है। टाइमर के विलंब का समय परिवर्तित किया जा सकता है क्योंकि इन्वर्टर के बैटरी चार्जिंग के इलेक्ट्रॉनिक आदेश को एक निर्धारित विभव के कन्डेंसर से पास किया जाता है। कन्डेंसर का निर्धारित विभव प्रेषित विभव $x (1-E^{t/RC})$ जहां E है लॉगरिथ्म का नेचुरल बेस t है विलंब, R है कन्डेंसर सर्किट में लगा प्रतिरोध और C है कन्डेंसर केपेसिटेंस। इस प्रकार R को परिवर्तित करके विलंब t बदला जा सकता है। इस विलंब से इन्वर्टर के सर्किट का अनावश्यक Change-over नियंत्रित हो जाता है।

इन्वर्टर बैटरी के 12 वोल्ट डीसी को 230 वोल्ट एसी में परिवर्तित करके विद्युत व्यवधान रोकता रहता है। स्वतः विद्युत आपूर्ति चालू करने के लिए इन्वर्टर में पावर स्रोत के स्विचिंग का स्वतः स्थानांतरण की व्यवस्था रहती है। इन्वर्टर से घर में भेजी गयी विद्युत की आवृत्ति को भी सामान्य विद्युत आपूर्ति की तरह 50 हर्ट्ज करने की भी व्यवस्था है। निर्धारित क्षमता से ज्यादा बिजली जब उपभोक्ता लेने लगता है तब इन्वर्टर सप्लाई काट देता है। बैटरी को चार्ज करने के लिए सामान्य 230 वोल्ट एसी को 12 वोल्ट डीसी में परिवर्तित करने के लिए इन्वर्टर के सर्किट में सिलिकान डायोड लगे होते हैं।

बैटरी के चार्जिंग के समय तापक्रम बढ़ जाने के कारण तथा सामान्य परिस्थिति में भी वाष्पीकरण होने के कारण बैटरी में पानी निर्धारित सतह से नीचे आ जाता है। ऐसी दशा में बैटरी में आसवित जल डालकर निर्धारित सतह तक पानी भर देना चाहिए। पानी कम होने पर एसिड की सांद्रता बढ़ने लगती है जिससे इलेक्ट्रोड क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। डिस्चार्ज्ड अवस्था में बैटरी ज्यादा समय तक नहीं रहना चाहिए क्योंकि इससे सल्फेट आयन घने कठोर तथा ख्रानुमा होने लगते हैं और इलेक्ट्रोड पर जम जाने पर रासायनिक अभिक्रिया के लिए इनकी उपलब्धता कठिन हो जाती है। ज्यादा डिस्चार्ज्ड अवस्था से बैटरी को सामान्य करने के लिए इन्वर्टर में बूस्ट चार्जिंग की व्यवस्था रहती है। विद्युत आपूर्ति सामान्य रहने पर भी टिकल चार्जिंग द्वारा इन्वर्टर बैटरी को चुस्त रखने का प्रयास करता है।

ज्योति अप्सरा के रूप में सौदामिनी अब जीवन के लगभग सभी चित्रों में प्रतिबिंबित होने लगी है। तारों में विद्युत प्रवाहित होते ही तत्त्व सत्यमय, सत्य शिवमय तथा शिव सौंदर्यमय प्रतीत होने लगता है। इन्वर्टर में अभी भी निर्माताओं के द्वारा सुधार अपेक्षित है क्योंकि ये शुद्ध साइन वक्र ठीक से नहीं चल पाते। आशा है भविष्य में डिजाइन में शोध करके इसके मूल्य में कभी और गुणवत्ता में वृद्धि करने का प्रयास जारी रहेगा।

उदय वीर सिंह
पूर्व अधीक्षण अभियंता, विद्युत परिषद,
H.I.G-12, प्रीतम नगर, इलाहाबाद 211011

9. बायीं करवट सोइये, पेट के जलन से बचिए।

अमरीकी वैज्ञानिक थॉमस जेफरसन का सुझाव है कि बांयी करवट सोकर अम्लता की जलन से बचा जा सकता है। तेल चर्बीयुक्त मन चाहा भोजन पर टूट पड़ना आदमी की स्वाभाविक कमजोरी है। अगर डटकर मन चाहा भोजन कर लिया जाय तो कुछ देर बाद कंठ से

लेकर छाती तक कहीं भी अम्लता होते ही आदमी छटपटा उठता है। अगर भर पेट स्वादिष्ट भोजन करने के बाद बायीं करवट लेटकर थोड़ी देर तक नींद ले ली जाय तो अम्लता की जलन से बचा जा सकता है।

चिकित्सकों का कहना है कि जब व्यक्ति बांयी करवट सोता है तब उसका आमाशय उदर या पेट की भोजन की थैली नीचे की ओर आकर टिक जाती है। इस प्रकार आमाशय ऊपर की स्थिति में होता है। और पाचक अम्ल नीचे की ओर बहता है। दाहिनी करवट की स्थिति में कई बार पाचक अम्ल भोजन की नली में काफी मात्रा में बह जाता है और इस तरह अम्लता की जलन होने लगती है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि यदि आपकी छाती में बार-बार जलन होती है तब अच्छा यह होगा कि आप अपने तकिये (कुशन) की ओर से पलंग के दोनों पायों को थोड़ा ऊंचा कर लें। इस प्रकार आपका बिस्तर ढलुआं हो जाता है और गुरुत्वाकर्षण के कारण अम्ल आपकी छाती और भोजन नली की ओर नहीं जा पायेगा तथा जलन की शिकायत भी कम हो जायेगी।

प्रेषक - शाहआलम सिद्दीकी
रेलवे ट्रांजिट हाउस नं. - 15
बिछिया रेलवे कालोनी, पत्रालय रेलवे कालोनी,
गोरखपुर (उ. प्र.) - 273 012

❑❑❑

भारत की प्रथम विज्ञान कथा वेबसाइट

विज्ञान कथा लेखन फिलहाल भारत में उस गरिमामय स्तर को नहीं छू पाया है जो स्थिति पश्चिमी साहित्य जगत में उसने अर्जित कर ली है। हालात यह है कि पश्चिमी साहित्य में वैज्ञानिक साहित्य 60 प्रतिशत से अधिक भागीदारी के साथ अपना वर्चस्व कायम कर चुका है। और माइकल काइक्टन, ए. सी. क्लार्क, विलियम गिबसन, बेन बोवा... आदि तीव्र गति से भारतीय बुकस्टालों पर अपना स्थान बढ़ाते जा रहे हैं, पर मौलिक भारतीय वैज्ञानिक साहित्य लगभग लुप्तप्राय सा है।

तथापि कई संस्थाएं : 'भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति (फैजाबाद); पत्रिकाएं यथा आविष्कार, विज्ञान प्रगति, वैज्ञानिक, जिज्ञासा, संदर्भ, विज्ञान... इत्यादि भरपूर प्रयास कर रही हैं कि न केवल इस विधा को संरक्षित रखा जाये बल्कि यह जनसामान्य में लोकप्रिय भी हो सके।

इसी कड़ी में एक नवीन व असाधारण माध्यम का प्रवेश हुआ है। इंटरनेट, आधुनिक जीवन का एक परमावश्यक अंग बन चुका है, और इंटरनेट सदृश्य सशक्त माध्यम द्वारा भारतीय विज्ञान कथाकारों को एक अंतर्राष्ट्रीय मंच उपलब्ध कराने का सराहनीय कार्य किया है श्री आर्य के. मदन मोहन ने। एम. बी. ए. डिग्री से लैस श्री आर्य भारत की संभवतः प्रथम विज्ञान कथा वेबसाइट के संस्थापक व अध्यक्ष हैं। इस बेवसाइट पर विज्ञान कथाएं, विज्ञान संबंधी मनोरंजक व शिक्षाप्रद सामग्री के साथ चर्चा, विचार विमर्श की सुविधाएं भी उपलब्ध हैं। वेबसाइट अत्यंत ही रोचक है और इसमें कल्पनाशीलता का भरपूर प्रयोग किया है। साइट पर आप विज्ञान कथाएं पढ़ सकते हैं, डाउन लोड कर सकते हैं और प्रिन्ट भी निकाल सकते हैं - पूर्णतः निशुल्क। लेखकगण अपनी रचनाएं सीधे वेबसाइट के पते पर ई-मेल द्वारा भेज सकते हैं। आकर्षक मानदेय की व्यवस्था भी है। मैंने कई बार इस वेबसाइट की यात्रा की है। और बार बार इसे देखने के बाद एक ही वाक्य बचता है - 'रचना व कल्पनाशीलता के इस स्वप्निल संसार में इससे बेहतर व सुंदर प्रयास भला और क्या होगा ?'

वेबसाइट का पता है - www.indianscifi.com

प्रस्तुति : श्री स्वप्निल भारतीय आर्नी
तारा प्रिंटिंग प्रेस, नयी बस्ती, लखीमपुर - खीरी (उ. प्र.) 262 701

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केंद्र से :

1. प्राकृतिक परिसंचरण प्रवाह बंटन के अध्ययन हेतु प्रायोगिक सुविधा

भा प अ केंद्र ने प्रस्तावित प्रगत भारी पानी रिएक्टर (एडवान्सड हैवी वाटर रिएक्टर, AHWR) को ध्यान में रखकर कई अनुसंधान व विकास के कार्यक्रम प्रारंभ किये हैं। प्रगत भारी पानी रिएक्टर (प्र. भा. पा. रि.) अभिकल्पन की एक खास बात पानी के प्राकृतिक परिसंचरण (सर्कुलेशन) द्वारा रिएक्टर क्रोड का शीतलन है।

प्र. भा. पानी रिएक्टर का प्राथमिक ताप वहन (प्राइमरी ताप ट्रांसपोर्ट, PHT) निकाय, सभी पावर स्तरों पर, जिसमें रिएक्टर को प्रारंभ करना व बंद करना भी शामिल है, रिएक्टर क्रोड के ताप को ताप-साइफिनिंग द्वारा निकालने के लिए अभिकल्पित किया गया है। इस तरह के निकाय की, जिसमें कई शीतलक चैनल समानांतर रूप से जुड़ी हैं, क्रिया विधि को परखना और समझना बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। रिएक्टर परिचालन की विभिन्न अवस्थाओं में, क्रोड अखंडता व सुरक्षा, पूर्णतः प्रभावी शीतलन पर ही निर्भर करती है।

इसको ध्यान में रखकर रिएक्टर इंजीनियरिंग प्रभाग ने, हाल ही में, एक प्रयोगात्मक सुविधा को निर्मित व प्रारंभ किया है, जिससे प्र. भा. पा. रि. के प्राथमिक ताप वहन निकाय में प्राकृतिक परिसंचरण निकाय के प्रवाह बंटन (फ्लो डिस्ट्रीब्यूशन) का अध्ययन किया जा सके। इस सुविधा में दस समानांतर प्रवाही चैनल हैं। प्रत्येक का अपना नियंत्रित ताप स्रोत है। चूंकि यह निकाय अधिकांश में पारदर्शी है, अतः थर्मल हाइड्रॉलिक इंस्टेबिलिटी, फ्लोपैटर्न ट्रांजिशन, फ्लो रिवर्सल, आदि घटनाओं को, जो जल की दो प्रावस्थाओं (फेज) प्रवाह से (वायु दाब व 100°C पर) जुड़ी हैं, इसमें देखने व समझने में आसानी है। यद्यपि यह सुविधा मुख्यतः समानांतर चैनलों से संबंधित प्रवाह को समझने, यानि यह ज्ञात करने के लिए कि विभिन्न प्रक्रिया प्राचलों (प्रोसेस पेरामीटरों) से प्रवाह किस तरह प्रभावित होता है, के लिए अभिकल्पित की गयी है तथापि इसका मॉड्यूलर अभिकल्पन इसे सरलता से नये रूप में बदलने में सक्षम बनाता है। इसकी यह विशेषता इसे अन्य कई क्षेत्रों, जैसे रिएक्टर प्रारंभ करने की प्रक्रिया, चालू रिएक्टर में ईंधन हस्तन के समय उत्पन्न अल्पकालीन प्रवाह-परिवर्तन, निकाय विन्यास परिवर्तन के प्रभाव और स्थिरता नियंत्रण-युक्तियों की कार्य-निष्पादनता आदि के अध्ययन में भी एक अच्छा साधन बना देती है। यह प्रयोगात्मक युक्ति पूर्णतः यंत्रीकृत और डाटा-प्रोसेसरों से युक्त है व चालू गतिविधियों को दर्शाती है।

2. सायरस रिएक्टर की पाइल ब्लॉक के भीतरी हीलियम पाइप फ्लेंज की सुदूर मरम्मत

सायरस केलेंड्रिया से जुड़े हीलियम कवर गैस निकाय के आठ "टंग और ग्रुव" फ्लैंज जोड़ों से रिसती हीलियम गैस को रोकने के लिए एक अनूठी सुदूर संचालित मरम्मत विधि विकसित की गयी है। ये फ्लैंज 200 मिमी के अंतराल (गैप) में, रिएक्टर क्रोड संरचना (स्ट्रक्टर) में पाइल की ऊपरी सतह से 4 मीटर की गहराई में स्थित हैं और वहां तक पहुंचना काफी कठिन है।

सुदूर मरम्मत-प्रणाली हेतु ढलुवां भीतरी सतहों व दो भागों में बटे सीलिंग क्लैंपों का अभिकल्पन व संविरचना की गयी है। इन क्लैंपों को हीलियम फ्लैंजों के दोनों ओर रखकर कसने से रिसाव को रोकने में सफलता मिली है। कंप्यूटर कोड Caesar-II द्वारा विस्तृत पाइपिंग-विश्लेषण कर, रिएक्टर सुरक्षा प्रभाग ने, क्लैंपों के कसाव का परिणाम और उसे कसने की विधि निश्चित की।

सुदूर प्रचालित क्लैंप कसने के यंत्र विकसित व अंशांकित (केलिब्रेट) किये गये। पूर्ण विधि का परीक्षण (व उन्नतिकरण), विशेष रूप से, इस हेतु बनाये गये नकली स्टेशन पर किया गया। पूर्ण सुदूर-दर्शन (रिमोट व्यूइंग),पाइल छिद्रों से दो वीडियो कैमरों को फ्लैंज स्थल तक डालकर एवं उन्हें पाइल के ऊपर स्थित वीडियो मॉनीटर से जोड़कर किया गया। पाइल-छिद्रों मे प्रवेश करा कर क्लैंपों और कैमरों का, नायलोन की रस्सियों की मदद से कठपुतलियों की तरह से संचालन किया गया। क्लैंपों को स्थल पर स्थिर और कसने का कार्य सुदूर दर्शन

से किया गया। 8 में से 4 फ्लैंज जोड़ों को कसने के साथ ही हीलियम गैस रिसाव कम हो गया है। क्लैंपों को कसने का कार्य अभी जारी है। फ्लैंज जोड़ों की सुदूर मरम्मत रिएक्टर ग्रुप भा प अ केंद्र द्वारा की जा रही है।

3. यूरेनस नाइट्रेट घोल के उत्पादन की अविद्युत अपघटनी विधि

इस्तेमाल किये गये रिएक्टर ईंधन के पुनर्संसाधन हेतु, पूरेक्स (PUREX) विधि में, U(VI) और Pu(IV) को नाइट्रिक अम्ल से निष्कर्षक (extractant) टी बी पी (TBP) द्वारा सह निष्कर्षित (Co-extracted) किया जाता है, विखंडन उत्पादों का अधिकांश भाग जलीय धारा में रह जाता है। निष्कर्षित यूरेनियम और प्लूटोनियम को एक दूसरे से अलग करने के लिए Pu(IV) को Pu(III) में, अपचयी स्ट्रिपिंग (reductive stripping) द्वारा बदलते हैं। पारंपरिक विधि में इस हेतु यूरेनस (नाइट्रेट नाइट्रिक अम्ल की उपस्थिति में) अपचायक (reducing-agent) के रूप में और हाइड्राजीन (hydrazine) नाइट्रेट स्थायीकारक (stabilizer) के रूप में, दोनों का एक साथ प्रयोग करते हैं। प्रायः इसका उत्पादन यूरेनाइल नाइट्रेट के विद्युत अपघटनी अपचयन से किया जाता है।

इस विधि की कई कमियां हैं, जैसे कि 100% परिवर्तन में कठिनाई, विद्युताग्र चलने की अवधि (इलेक्ट्रोड लाइफ), आदि। भा प अ केंद्र में 100% यूरेनस नाइट्रेट उत्पादन की नयी विधि का विकास व मानकीकरण किया गया है, इसमें U(VI) को H_2 गैस द्वारा, हाइड्राजीन और महीन पिसे PtO_2 की उपस्थिति में अपचयित किया जाता है।

प्रयोगशाला अध्ययनों को आधार बनाकर 20 लीटर धारिता के एक अपचयन कॉलम का अभिकल्पन कर, उसे संविरचित किया गया। इसे H_2 गैस हस्तन की सभी सुरक्षा विशेषताओं से सज्जित कर, प्लांट से प्राप्त यूरेनियम उत्पाद घोल को [U(IV) के उत्पादन हेतु] उपचारित करने के लिए स्थापित किया गया है। ईंधन पुनर्संसाधन प्रभाग ने इसका निर्माण अपनी वर्कशाप में किया है। प्लांट से प्राप्त यूरेनाइल नाइट्रेट को पहले, पॉलीस्टाइरिन डिवीनाइल बेंजीन पॉलीमर मैट्रिक्स (अमिलक्षकीय समूह विहीन) से उपचारित करते हैं ताकि उसमें घुले कार्बनिक पदार्थ (आरगेनिक्स) निकल जायें और अपचयन के दौरान झाग न बनें। उपचारित यूरेनाइल नाइट्रेट घोल का इस्तेमाल कॉलम में किया जाता है।

100 ग्रा./ली. यूरेनियम घोल में 1-2 M HNO_3 व 0.5 M हाइड्राजीन नाइट्रेट स्थायीकारक मिश्रित कर बनाये 5 लीटर घोल पर कॉलम-प्रयोग किये गये हैं। कॉलम का मानकीकरण H_2(8%)-N_2 गैस मिश्रण से प्रचालन हेतु किया गया, यद्यपि इसका अभिकल्पन 100% H_2 गैस के इस्तेमाल के लिए किया गया है। प्राप्त परिणाम दर्शाते हैं कि U(VI) का U(IV) में 100% परिवर्तन, या 60 या 15 मिनटों में संभव है, जो क्रमशः 8% H_2-N_2 या 100% H_2 के इस्तेमाल पर निर्भर करता है। प्रक्रम विकास प्रभाग (PDD) में किये जा रहे इन प्रयोगों में एक सफलता यह है कि लगभग पूर्ण परिमाण में यूरेनाइल नाइट्रेट का अपचयन, केवल हाइड्राजीन द्वारा (बिना H_2 के) चार घंटों में, समान अवस्था में किया जा सकता है। इससे ईंधन पुनर्संसाधन धाराओं में इस तकनीक की उपयोगिता की संभावनाएं उजागर होती हैं। यह समझा जा रहा है कि यह अनुसंधान कार्य पुनर्संसाधन प्लांट के प्रचालन को काफी आसान बना देगा।

4. रासायनिक इंजीनियरी प्रभाग में नयी विश्लेषण सुविधाएं

भा प अ केंद्र के केमिकल इंजिनियरिंग प्रभाग में पिछले 20 सालों से कई पृथक्कारक (सेपरेटर) संयंत्र, पायलेट पैमाने पर स्थायी-समस्थानिकों को अलग करने के लिए चलाये जा रहे हैं। प्रक्रम की विभिन्न धाराओं में समस्थानिकीय व लेशीश (trace) विश्लेषण हेतु विश्लेषण सुविधाओं की बहुत जरूरत है। नौवीं योजना के बढ़े हुए उत्पादन लक्ष्य के कारण इस क्षेत्र में अचानक गतिविधियां बढ़ गयी हैं, साथ ही विभिन्न इस्पातों, मिश्र धातुओं (जैसे मोनेल व इनकोनेल आदि), व अन्य धातुओं तथा खरीदे जाने वाले रसायनों के लेशीश विश्लेषण की मांग भी बढ़ती जा रही है।

विश्लेषण की इन बढ़ती हुई जरूरतों को पूरा करने के लिए आधुनिकतम विश्लेषण यंत्रों को प्राप्त करना

अपरिहार्य हो गया है। अत: दो आधुनिकतम यंत्र; तापीय आयनीकरण स्रोत द्रव्यमान स्पेक्ट्रोमीटर (Thermal Ionisation Source Mass Spectrometer / TIMS) व कंप्यूटर नियंत्रित द्विपुंजी परमाणु अवशोषण प्रकाशमापी (Atomic Absorption Spectrophotometer -AAS)) व इससे जुड़ी ग्रेफाइट भट्टी व हाइड्राईड जनक के साथ, प्राप्तकर स्थापित किये गये हैं। दोनों मशीनों का संक्षिप्त वर्णन व उनकी विश्लेषण संबंधी खासियतें निम्न प्रकार हैं :

(क) तापीय आयनीकरण स्रोत द्रव्यमान स्पेक्ट्रोमीटर

इस मशीन का अभिकल्पन, विकास व संविरचन केंद्र के तकनीकी भौतिकी व प्रोटोटाइप इंजीनियरी प्रभाग (TPPED) ने किया है। अभिकल्पकों द्वारा विनिर्देशित आवश्यक पदार्थों व घटकों का लगभग 80% यहीं से प्राप्त करने का काम केमिकल इंजिनियरिंग प्रभाग ने किया है। इस स्पेक्ट्रोमीटर में तीन फिलामेंट वाला आयन स्रोत, बिंदुक फोकसन (stigmatic focusing) चुंबकीय विश्लेषक ज्यामिति और आयन पुंजों को एक साथ एकत्र करने हेतु तीन फैराडे कप (संग्राहक) हैं। अब यह मशीन नमूनों (जैसे बोरोन -10 व अन्य समस्थानिकों, द्रव्यमान 100 तक वाले) का समस्थानिक अनुपात मापन, नियमित तौर पर करने हेतु तैयार है। ये नमूने प्लांट या अन्य अनुसंधान/विकास कार्य में प्राप्त होते हैं। इस सुविधा का उपयोग अनुसंधान व विकास के विभिन्न अध्ययनों, जैसे समस्थानिकों का विश्लेषण प्रभाव, विभिन्न पदार्थों के फिलामेंटों का स्रोत निकाय में प्रयोग करने पर विश्लेषण सुग्राहिता पर पड़ने वाला प्रभाव आदि, में किया जाता है।

इस मशीन की कुछ मुख्य विशेषताएं संक्षेप में दी गयी हैं : (क) स्रोत : त्रिफिलामेंट निकाय, (ख) चुंबकीय क्षेत्र की तीव्रता : 8 कि. गॉस, (ग) वक्रता-अर्धव्यास : 15 सेंमी (बिंदुक फोकसन के साथ प्रभावी अर्धव्यास 30 सेंमी है), (घ) त्वरण वोल्टता : 5 किवोल्ट, (च) द्रव्यमान परास : 1 से लेकर 100 ए. एम. यू. (कम त्वरण पर कार्य कर इसे बढ़ाया जा सकता है), (छ) विभेदन : 200 (10% वैली (valley) के साथ), (ज) संसूचक : फैराडे कप, (झ) डाटा निकाय : विंडो 95 पर आधारित कंप्यूटर सॉफ्टवेयर (इससे शिखरों का क्रमवीक्षण, शिखर अतिव्याप्ति (overlap) को पटल पर प्रदर्शित कर उनका अनुपात या अन्य संबंधित प्रचल ज्ञात किये जा सकते हैं।

(ख) द्विपुंजी परमाणु अवशोषण स्पेक्ट्रोमीटर

आधुनिकतम परमाणु अवशोषण प्रकाश मापी, मॉडल AVANTA PM, मैसर्ज GBC साइंटिफिक इक्यूपमेंट प्रा. लि., आस्ट्रेलिया से प्राप्त किया गया है। इस द्विपुंजी मशीन की खास विशेषताएं इस प्रकार हैं। असममित (asymmetric) माडुलम (सिग्नल/शोर (S/N), को बढ़ाने हेतु), शीघ्र पृष्ठभूमि सुधार (background correction) - जिससे अत्यधिक शुद्ध अवशोषणांक पठनांक मिलते हैं, स्वचालित दाहक घूर्णन (सांद्रित नमूनों हेतु), शक्तिशाली ग्रेटिंग (अधिक विभेदन हेतु) आदि कुछ विशेषताएं इस मॉडल को बाजार में उपलब्ध अन्य मॉडलों की तुलना में, श्रेष्ठ बनाती हैं। इससे जुड़ी ग्रेफाइट भट्टी व हाइड्राइड उत्पादक इसे लगभग 70 तत्त्वों की विश्लेषण क्षमता प्रदान करती हैं अत: इस मशीन की प्राप्ति से प्रभाग की विश्लेषण क्षमता बढ़ जायेगी।

इस मशीन की कुछ और विशेषताएं, संक्षेप में, निम्न हैं : (क) मॉडल : AVANTA PM, (ख) प्रकाशिकी : द्वि पुंज, (ग) तरंग दैर्घ्य परास : 185-900 नैनीमीटर, (घ) माऊंटिंग : ऐबर्ट-फास्टी (Ebert-Fastie), (च) वर्णित मोनोक्रोमेटर : विवर्तन ग्रेटिंग 1800 रेखाएं/मिमी व 254 नैनोमीटर पर प्रभावर्धित (blazed), (छ) रेखाछिद्र : 0.2 से 2.0 नैनोमीटर तक सतत परिवर्तनीय चौड़ाई और ऊंचाई, (ज) लैंप : कंप्यूटर नियंत्रित 8 लैंपों का समूह, (झ) फोकसन दूरी : 333 मिमी, (ट) गैस बहाव : कंप्यूटर नियंत्रित व अंत:बाधित (interlocked) सुरक्षात्मक गुण, (य) ग्रेफाइट भट्टी के साथ स्वसेंपलर का प्रावधान, (द) हाइड्राइड उत्पाद मॉड्यूल का प्रावधान, (ध) विभिन्न चालक-प्राचलों को नियंत्रित व संबंधित डेटा को पटल प्रदर्शित करने हेतु विंडो - 98 पर आधारित कंप्यूटर प्रोग्राम।

प्रस्तुति : **डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला**
संपादक - 'वैज्ञानिक'

अन्य विज्ञान समाचार

1. संगीत और मनोभ्रंश (Dementia)

विलियम शेक्सपीयर ने जरावस्था की तुलना एक प्रकार की पुनरावर्ती बाल्यावस्था से की है। संभवत: यह परिकल्पना वयोवृद्ध व्यक्तियों में दंत-क्षय के कारण हुए दंत-लोप, नेत्रों के आकार में छोटापन, बालसदृश स्वाद लोलुपता और अभिरुचि के प्रति आकर्षण इत्यादि के परिणामस्वरूप शिशुवत व्यवहार प्रदर्शन के ऊपर आधारित है। इटली के ब्रेसिया में एल्जाइमर व्याधि के अनुसंधान एवं अनुरक्षण हेतु स्थापित राष्ट्रीय केंद्र में कार्यरत प्रो. गियोवेनी फ्रिसोनी के शोधवर्ग ने एक अध्ययन में यह ज्ञात किया है। एक प्रकार का जरावस्थागत बुद्धिभ्रंश मानवीय संगीत रुचि को कई प्रकार से प्रभावित कर सकता है (जो पश्चगमन (Regression) की ओर संकेत करता है) जैसी कि यौवनारंभ आयुगत किशोरवय व्यक्तियों में प्राय: प्रदर्शित होती है। अग्रटेम्पोरल मस्तिष्कभ्रंश का प्रमुख कारण मस्तिष्क के अग्र भाग और दोनों पार्श्ववर्ती क्षेत्रों की क्षति के रुप में ज्ञात हुआ है। इन क्षेत्रों से वाणी, विचारक्षमता एवं निर्णयात्मक दक्षता का नियंत्रण किया जाता है। अतएव इनमें क्षति के परिणाम विभिन्न लक्षणों का प्रदर्शन करते हैं, यथा-स्मरणशक्ति का लोप, एल्जाइमर व्याधि जो प्राय: मस्तिष्क के हिप्पोकैम्पस और एर्मीग्डैला को भी प्रभावित करती हैं तथा इनकी व्याप्तता उच्च पायी गयी है। अग्रटेम्पोरल मनोभ्रंश दुष्प्राप्य (Rare) होती है।

विगत 5 वर्षों के अंतराल में ब्रेसिया शोध केंद्र में 1500 एल्जाइमर व्याधि पीड़ित रोगियों का उपचार सफलतापूर्वक किया जा चुका है जबकि इस अवधि में केवल 46 रोगी FTD (अग्रेटेम्पोरल मनोभ्रंश) ग्रस्त पाये गये। इनमें से दो रोगी डॉ. फ्रिसोनी द्वारा परीक्षणात्मक अध्ययन के लिए चयनित किये गये - एक 68 वर्षीय एडवोकेट और दूसरी 73 वर्षीय गृहिणी महिला - दोनों की स्मरण क्षमता सामान्य पायी गयी थी परंतु FTD के निदान के संबद्ध कई लघु-दोषों की पुष्टि मस्तिष्क के पर्यावलोकन (Scanning) द्वारा हो सकी थी। लगभग 2 वर्षों के उपरांत एडवोकेट, जो कभी शास्त्रीय संगीत प्रेमी था, पॉप संगीत को शोर मानने लगा था। इटालियन पॉप बैंड 883 को सुनने में उसे रुचि प्राप्त हुई और वह इसको पसंद करने लगा था। जैसे-जैसे उसका भाषागत नियंत्रण तथा परिवार जनों एवं मित्रों से भावात्मक लगाव समाप्त होने लगा, उसने बैंड 883 का लगातार कई घंटों तक वर्धित स्वरावृत्ति पर सुनना प्रारंभ कर दिया।

एडवोकेट की तरह महिला की रुचि संगीत के प्रति नहीं थी और उसने किसी प्रकार के संगीत का रसास्वादन नहीं किया था परंतु निदान के उपरांत लगभग 1 वर्ष बाद उसने गीतों में अत्यधिक रुचि लेना आरंभ कर दिया जिन्हें उसकी ग्यारह वर्षीय पुत्री सुनती रहती थी। इस प्रकार का आश्चर्यजनक परिवर्तन एल्जाइमर व्याधि ग्रस्त रोगियों में प्रदर्शित नहीं होता है। FTD रोगियों में कभी-कभी नवीन प्रतिभा का भी विकास देखा जाता है, इस तरह के 5 रोगियों में चित्र निर्माण क्षमता का विकास हुआ। एक FTD महिला रोगी ने अकस्मात लोकगीतों की रचना और पश्चिमी संगीत में रुचि लेना प्रारंभ किया। डॉ. फ्रिसोनी की धारणा है कि यह व्याधि व्यक्तियों में नवीन अनुभवों के प्रति अभिरुचि को जागृत करती है।

कतिपय पूर्व संपादित व्यावहारिक अध्ययनों से यह संकेत प्राप्त हुए हैं कि मस्तिष्क के दक्षिणवर्ती अग्रभाग से ही व्यक्ति का व्यवहार नियंत्रण होता है और बायां अग्रभाग क्षतिग्रस्त या आघात होने पर दक्षिणवर्ती भाग की प्रधान भूमिका प्रदर्शित होती है। इसी के परिणामस्वरुप नवीन अनुभव प्राप्ति की अभिलाषा का आविर्भाव होता है। मतान्तरेण, क्षतिग्रस्त हो जाने के कारण तंत्रिका संबंधित विशिष्ट परिपथों के (जो संगीत के विभिन्न प्रकारों के चयन अथवा उनमें रुचि के प्रति उत्तरदायी होते हैं) प्रभावित हो जाने के परिणामस्वरुप इस प्रकार के रुचि-परिवर्तन हो सकते हैं।

2. कोशिका प्रवेश के उद्देश्य से जीवाणुओं द्वारा छिद्र निर्माण

मिसौरी (अमरीका) के वैज्ञानिकों ने एक विशिष्ट वर्ग के जीवाणुओं द्वारा जीव कोशिका में संक्रमण के उद्देश्य से प्रवेश करने की प्रक्रिया का गहन अध्ययन

किया है और स्पष्ट किया है कि ग्रामधनात्मक (Gram +Ve) जीवाणु (यथा - कंठशोधकारी अथवा संधिवातीय ज्वर के जीवाणु) कोशिका के बाह्य आवरण में छिद्र करने के उद्देश्य से एक प्रोटीन का सृजन करते हैं और कोशिकावरण में छेद करके उसे संक्रमित कर देते हैं। यह जानकारी प्रतिजीवकों के प्रतिरोधी जीवाणुओं को नष्ट करने हेतु प्रभावी सिद्ध हो सकती है। इस प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में नये आयाम भी स्थापित किये जा सकेंगे।

वाशिंग्टन विश्वविद्यालय के सेंट लुई परिसर में शोध कर रहे डॉ. माइकेल कैपरोन के अनुसार ग्रामधनात्मक जीवाणु कोशिका के भीतर विषैले टॉक्सिनों को प्रविष्ट करने के लिए दो चरणों वाली प्रक्रिया का उपयोग करते हैं। प्रथम चरण में जीवाणु कोशिकावरण में छेद करके उन्हें संक्रमित कर देते हैं, द्वितीय चरण में जीवाणु द्वारा उत्पन्न की गयी प्रोटीन को कोशिका में प्रविष्ट कर दिया जाता है। इस प्रकार जीवाणु स्वयं प्रवेश किये बिना ही कोशिका की सामान्य जैविक क्रियाओं के साथ छेड़ छाड़ करने लगते हैं।

ग्रामधनात्मक जीवाणुओं के प्रति प्रभावी नवीनतम औषधियों का विकास संप्रति अत्यावश्यक है क्योंकि ये सूक्ष्मजीवी छः प्रकार के शीर्षस्थ जैविकीय संक्रमणों में से पांच के लिए उत्तरदायी होते हैं और ये पांचों संप्रति उपलब्ध अधिकांश प्रतिजीवकों के प्रतिरोधी होते हैं। शोधकर्ता मुख्यतः अपने प्रयोग एक ग्राम धनात्मक जीवाणु-स्टेफाइलोकॉकस या स्ट्रेप्टोकॉकस पायोजीनेस पर करते हैं। स्टेफाइलोकॉकस स्टेफ एक अन्य व्याधिकारी जीवाणु है जो कई अन्य प्रजातियों के ग्राम धनात्मक जीवाणुओं के प्रतिजीवकों के लिए प्रतिरोधक के रूप में शीर्षगामी सिद्ध हुआ है।

यद्यपि ई. कोलाई और साल्मोनेला की भांति ग्राम ऋणात्मक जीवाणु भी प्रोटीनों के प्रवेशन हेतु उपरोक्त प्रक्रिया ही अपनाते हैं तथापि अद्यतन यह सुनिश्चित नहीं किया जा सका है। प्रो. कैपरोन के अनुसार यह ज्ञात करना अभी भी शेष है कि विषैली प्रोटीनें कोशिकावरण में सृजित छिद्रों के भीतर होकर आगे की यात्रा किस प्रकार संपन्न करती हैं।

3. धूम्रपान करने वालों में वंशाणु-विषाक्तता के जैविक संकेतक

कैंसर के संदर्भ में जैविक संकेतकों (Biomarkers) की पहचान अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। कतिपय जैविक संकेतक वंशाणु विषाक्तता एवं कैंसर से इसके अंतरंग संबंध को प्रदर्शित करते हैं। ग्लूटेथियोन एस ट्रांसफेरेज GST- Mu एक प्रकार का आइसोएन्जाइम और जैविक संकेतक का कार्य करता है। यह प्रतिक्रियात्मक विद्युताकर्षी माध्यमों को विषहीन करने में समर्थ है। GST-Mu के स्तर ज्ञात करने के उद्देश्य से किये गये एक सर्वेक्षणाधारित अध्ययन के अनुसार धूम्रपान न करने वालों की अपेक्षा धूम्रपान करने वाले व्यक्तियों के लिम्फोसाइट्स में इस जैविक संकेतक के वर्धित स्तर पाये गये।

धूम्रपान न करने वाले व्यक्तियों में 46% में एन्जाइम के अति न्यून स्तर (0-11 यूनिट) पाये गये जबकि 54% में 48-299 यूनिट की क्रियाशीलता प्रदर्शित हुई। धूम्रपान करने वालों में से 76% व्यक्तियों में एन्जाइम के उच्चस्तर प्रदर्शित हुए। कैंसरग्रस्त रोगियों में से धूम्रपान करने वालों में मात्र 46% में ही निदान योग्य मात्रा में एन्जाइम पाया गया। कैंसर विहीन धूम्रपान करने वालों में भिन्न परिणाम प्रदर्शित हुए हैं ($P<0.01$)।

उपर्युक्त अध्ययनों के निष्कर्ष स्वरूप यह स्पष्ट हो गया है कि GST-Mu क्रियाशीलता वाले व्यक्तियों को DNA की क्षति का विशेष संकट रहता है जबकि धूम्रपान करने वालों में से जो एन्जाइम के स्तर में वृद्धि हेतु अक्षम होते हैं, कैंसर के प्रति सुग्राही होते हैं।

4. कैंसर कोशिकाओं को आत्मघाती प्रेरणादायी औषधियों ने जगायी नवीन आशाएं

कतिपय विशिष्ट प्रकार के कैंसरों के सफ़ल उपचार हेतु नवीन औषधि खोज के क्षेत्र में वेल्स और स्कॉटलैंड के वैज्ञानिकों ने एक अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। प्रो. विनफोर्ड थॉमस और डेविडलेन ने एक ऐसी औषधि का विकास किया है, जो शरीर की प्रतिरक्षा का उपयोग कैंसर कोशिकाओं को आत्मविनाश की ओर प्रोत्साहित करने

हेतु करती है। इनके अनुसार यह चमत्कारी औषधि स्तन, थॉयरायड एवं त्वचावर्ती कैंसरों के विरुद्ध प्रभावी होती है। मानव शरीर की प्रत्येक कोशिका में एक स्वाभाविक कैंसर रोधी जीन (P53) उपस्थित होता है जो सामान्यत: अप्रभावी रहता है परंतु DNA को क्षति पहुंचने पर यह तत्काल क्रियाशील होकर कैंसर कोशिकाओं में आत्मघाती प्रवृत्ति उत्पन्न करने लग जाता है। P53 जीन के इस प्रभाव को थॉयराइड अर्बुदों के द्वारा उत्पन्न एक प्रोटीन (Mdm-2) निष्फल कर देती है और कैंसर कोशिकाओं को P53 के नियंत्रण से बच निकलने में सहायक होती है। इस प्रकार यह प्रोटीन जीवनघाती अर्बुद की वृद्धि को प्रेरित करती है।

वैज्ञानिकों ने Mdm-2 प्रोटीन के कार्य में अवरोधक सर्जक एक विशिष्ट प्रतिपिंड (Antibody) की खोज भी कर ली है। यह P53 के कार्य को संपादित होने हेतु मार्ग प्रशस्त करती है। कैंसर अनुसंधान केंद्र, डंडी विश्वविद्यालय, इंग्लैंड (UK) में कार्यरत कोशिका विज्ञानी प्रो. लेन एक ऐसी औषधि का विकास कर रहे हैं जो प्रतिपिंड का छद्म रुप होती है। प्रो. थॉमस के अनुसार Mdm-2 सामान्यत: सभी कोशिकाओं में प्राकृतिक रुप में होती है परंतु अर्बुदकारी कोशिकाओं में अधिक मात्रा में पायी जाती है। यह आनुवंशिकीय रुप (वंशाणुरुप) में नहीं होती है परंतु अर्बुद के उद्भव के पश्चात् विखंडन में योगदान अवश्य देती है।

Mdm-2 किसी भी प्रतिपिंड से टकराने के परिणामस्वरुप कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि में अवरोधक होती है। छद्म प्रतिप्रिंड या औषधि के प्रभाव से P53 जीन को अपने कार्य पथ पर पुनर्प्रतिष्ठित करना संभव होता है। आशा की जाती है कि इस अर्बुद दमनकारी औषधि के प्रयोग से न केवल अर्बुद की वृद्धि रोकना संभव होगा अपितु इसे पूर्णतया नष्ट करने भी सफलता अर्जित की जा सकेगी। प्रायोगिक स्तरों पर संपन्न हुए अध्ययनों में यह स्पष्ट हो गया है कि प्रतिपिंड कैंसरजनक कोशिकाओं को नष्ट कर देती हैं। संप्रति, वैज्ञानिकों द्वारा ऐसी औषधि की खोज की जा रही है जो कोशिकाभित्ति में प्रविष्ट होकर अथवा मुख के द्वारा ग्रहण किये जाने पर प्रभावी हो सके। वैज्ञानिकों ने कैंसर कोशिकाओं के अंदर स्थित मुख्य लक्ष्यों की पहचान पूरी कर ली है। थायरॉयड कैंसरों पर केंद्रित शोध कार्य से यह स्पष्ट हो चुका है कि इस प्रकार के कैंसर प्राय: स्तन कैंसर तथा दुर्दमनीय कृष्ण वर्णीयता (Malignant Melanoma) के आनुषंगिक होते हैं। P53 प्राय: 40% कैंसरों के प्रति विनाशक प्रभाव क्षमता सृजित करता है परंतु सभी प्रकार के कैंसरों में यह अवरोधकारी नहीं हो पाता है क्योंकि 60% के लगभग कैंसर इस रक्षात्मक तंत्र को अन्यान्य उपायों से निष्क्रिय कर सकते हैं।

एक सर्वेक्षण के आधार पर ब्रिटेन में प्रतिवर्ष 3,45,000 स्तन कैंसर, 4500 दुर्दमनीय कृष्णवर्णीयताएं और 1000 के लगभग थायरॉयड कैंसरों की पहचान की जाती है।

संकलन : पूजा तिवारी
टाइप IV-1, लाख अनुसंधान परिसर,
नामकुम-रांची (झारखंड) - 834 010

5. सिजोफ्रेनिया के उपचार में ऑस्ट्रोजन

दिमागी बीमारी मनुष्य को एक दम पशुनुमा बना देती है क्योंकि यही दिमाग हमें पशुओं से अलग करता है। ऑस्ट्रेलिया में डान्डेनोंग साइकियाट्री रिसर्च सेंटर में काम कर रही एक भारतीय मनोवैज्ञानिक जयश्री कुलकर्णी का दावा है कि महिलाओं में मौजूद ऑस्ट्रोजन हारमोनों के द्वारा सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित मरीजों के इलाज में बड़ी मदद मिल सकती है। इस खोज का जिक्र उन्होंने न्यू साइंटिस्ट नामक पत्रिका के हाल के अंक में किया है। गौर करने की बात यह है कि सिज़ोफ्रेनिया एक दिमागी बीमारी है जो सौ में से एक पुरुष और महिला को हो सकती है। इसमें विभ्रम, भ्रांति तथा उलझे विचार आते हैं जो एक सामान्य व्यक्ति से अलग होते हैं। कुछ एन्टी साइकोटिक ड्रग जैसे रिस्पेरीडीन से कुछ मरीजों को फायदा मिलता है। डॉ. कुलकर्णी ने अपने शोध कार्य में सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित 12 महिलाओं को एक महीने तक ऑस्ट्रोजन तथा रिस्पेरीडीन की डोज़ दी और 12 महिलाओं को केवल रिस्पेरीडीन की डोज़। यह उल्लेखनीय है कि डोज़ में ऑस्ट्रीजन की मात्रा आम गर्भनिरोधक गोलियों

से दुगुनी थी। इस अध्ययन के उपरांत यह देखा गया कि वे रोगी जिन्होंने ऑस्ट्रोजन एवं रिस्पेरीडीन की सम्मिलित डोज़ ली उनकी हालत में उल्लेखनीय सुधार हुआ। यह कैसे होता है इसके कुछ संकेत पशुओं पर किये अध्ययन से मिलते हैं। पशुओं पर किये परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि ऑस्ट्रोजन मस्तिष्क के दो अहम् रसायन डोपामाइन और सेरोटोनिन जिनके विकार से सिजोफ्रेनिया होता है, को सकारात्मक रुप से प्रभावित करता है।

6. अतिचालक प्लास्टिक

जब कभी भी पॉलीमर का जिक्र होता है तो हमारे मन में किसी उच्च प्रतिरोध वाले कुचालक की बात आती है क्योंकि पॉलीमर यानी एक प्रकार के प्लास्टिक का आम जीवन में कुछ ऐसा ही प्रयोग देखने को मिलता है। परंतु यह वैज्ञानिक परिदृश्य 1970 तक था जब ऐसे पॉलीमर खोज निकाले गये जिनमें विद्युतधारा का प्रवाह सुगम हो गया तो लोग कुछ चौंक से गये। कालांतर में इनका विकास कुछ इस तरह से होने लगा कि इनसे माइक्रो इलेक्ट्रॉनिकी के समतुल्य आण्विक इलेक्ट्रॉनिकी के सपने दिखाने की बात होने लगी। इसका ज्वलंत उदाहरण है वर्ष 2000 का रासायनिकी का नोबेल पुरस्कार जो डॉ. हीगर, डॉ. मैक डारमिड और डॉ. शिराकावा को कंजुगेटेड चालक पॉलीमर की खोज और संबंधित कामों के लिए दिया गया। वैज्ञानिकों की तृष्णा यहीं समाप्त नहीं हुई। इस दिशा में एक और नवीनतम खोज सामने आयी है। यह है प्रथम अतिचालक प्लास्टिक की खोज जिसे अमरीका के "बेल प्रयोगशालाओं" के डॉ. जे. एच. शॉन तथा उनके साथियों ने मिलकर तैयार किया है। इस पदार्थ का नाम है पौली हैक्साल थायोफीन यानी पी-थ्री. एच. टी (P3HT) जिसकी फिल्म 2.5 डिग्री केल्विन पर अतिचालकता प्रदर्शित करती है। इस प्रकार के अतिचालक पॉलीमर को बनाने के लिए पॉलीमर कड़ियों के आण्विक पृष्ठों यानी मॉल्यूकुलर प्लेन्स का एक इष्टतम समायोजन किया गया जो P3HT की फिल्म के लंबवत रहता है। इसमें माइक्रोइलेक्ट्रॉनिकी के FET संरचना द्वारा आवेश इंजेक्ट करते हैं तो अतिचालकता मिलती है।

7. नये उच्चताप अतिचालक की खोज

1987 में जब कॉपर-ऑक्साइड पर आधारित उच्च ताप अतिचालक की खोज हुई थी तो सारे वैज्ञानिक जगत में एक तहलका सा मच गया था। इसके बाद इस क्षेत्र में शोधों की लगभग बाढ़ सी आ गयी थी और लोगों ने विभिन्न क्रांतिकारी अनुप्रयोगों की कल्पना भी कर दी थी। यह एक बड़ी वैज्ञानिक उपलब्धि थी परंतु उसके वास्तविक एवं व्यावहारिक अनुप्रयोगों में अभी कुछ कठिनाइयां हैं। ब्रिटिश पत्रिका 'नेचर' के हवाले से एक ताजी जानकारी यह मिली है कि अब बिना कॉपर-ऑक्साइड वाला नया उच्चताप अतिचालक खोज निकाला गया है। इसका नाम है मैग्नेशियम डाई बोराइड जो 39 डिग्री केल्विन पर अतिचालकता प्रदर्शित करता है। वैज्ञानिक क्षेत्र में यह एक नये क्रांतिकारी पदार्थ के रुप में माना जा रहा है क्योंकि यह बहुअवस्थीय यानी मल्टीफेज़ होने के बावजूद पूर्णतः अतिचालक धारा को प्रवाहित करने में सक्षम है और चुंबकीय क्षेत्र से भी अधिक प्रभावित नहीं होता है। जबकि कॉपर ऑक्साइड पर आधारित उच्चताप अतिचालक में धारा सतही होती है और चुंबकीय क्षेत्र से उस पर प्रभाव पड़ता है जो इनके व्यावहारिक उपयोग में बाधक है। यहां पर ध्यान देने की बात यह है कि बिना कॉपर ऑक्साइड वाले अन्य अतिचालक जैसे सीजियम-रुबीडियम कार्बाइड, बेरियम पोटेशियम बिस्मथ ऑक्साइड, फुल्लरीन इत्यादि भी खोजे गये हैं परंतु उन सबकी अपनी अपनी सीमाएं हैं। इन सबसे अलग मैग्नेशियम डाई बोराईड में 'वीक लिंक्स' (Weak Links) जैसी समस्या नहीं पायी गयी है जो इनके संभावित अनुप्रयोग के लिए सबसे अहम् समझा जा रहा है।

8. अधिक वसायुक्त खुराक का मस्तिष्क पर कुप्रभाव

अभी तक सुना था कि अधिक चर्बी अथवा वसा युक्त भोजन करने से लोग मोटे होते हैं, उनको हृदय रोग हो सकता है। 'न्यू साइंटिस्ट' पत्रिका के एक नवीनतम अंक से यह जानकारी मिली है कि अधिक वसा दिमाग को भी कमजोर कर सकती है। कैनाडा के टोरंटो शहर में स्थित बेक्रेस्ट सेंटर फॉर जेरिआट्रिक केयर के वैज्ञानिकों -

डॉ. गॉरडन विनोकुर तथा डॉ. केरोल ग्रीनवुड ने इस संबंध में शोध कार्य किया है। उन्होंने एक माह के चूहों को जानवरों अथवा वनस्पतियों से प्राप्त चर्बी से युक्त खुराक चार महीनों तक लगातार दी जिससे उन्हें आवश्यक कैलोरी का 40% भाग इस चर्बी से मिला। इसके साथ साथ उन्होंने अन्य एक माह के चूहों को कम वसायुक्त पूर्ण खुराक लगातार चार महीनों तक जिससे उन्हें आवश्यक कैलोरी का केवल 10% भाग वसा से मिला। दक्षता मापन के दौरान यह पाया गया कि 40% चर्बीयुक्त खुराक लेने वाले चूहों की दक्षता काफी कम थी। इससे शोध कर्ताओं ने यह अनुमान लगाया कि शायद अधिक वसा की मौजूदगी में इन्सुलिन ग्लूकोज़ को अधिक लेने में असमर्थ हो जाता है। जिसका सीधा प्रभाव मानसिक सक्रियता पर पड़ता है। यूं तो यह सर्व विदित है कि इन्सुलिन ही खून में शक्कर की मात्रा का नियंत्रण करता है। और उच्च वसा युक्त खुराक इंसुलिन प्रतिरोधक मानी गयी है, वयस्क लोगों में मोटापे के कारण मधुमेह की बीमारी से स्मृति ह्रास भी होता है। डॉ. विनोकुर का मानना है कि किशोरावस्था में अधिक वसायुक्त खुराक से विकासशील दिमाग अधिक प्रभावित होता है बजाय विकसित दिमाग के।

9. मच्छरों की जीन सीक्वेंसिंग

21 वीं सदी के आरंभ में जीनोम परियोजना से मिले परिणामों ने जो धूम मचाई थी उससे तो शायद ही कोई अनभिज्ञ रहा होगा। जीन सीक्वेंसिंग की सफलता ने कई असाध्य बीमारियों के लिए सही इलाज के द्वार खोल दिये हैं। इस क्षेत्र में ताजी खबर यह है कि वैज्ञानिक अब मच्छरों की जीन सीक्वेंसिंग की ओर बढ़ रहे हैं क्योंकि यह एक ऐसा कीट है जो जानलेवा मलेरिया फैलाने में सक्षम है। यूं तो एक समय ऐसा लग रहा था कि संसार से मलेरिया पूर्णतः समाप्त हो गया है परंतु इसने पुनः सिर उठा कर वैज्ञानिकों के समक्ष नयी चुनौती खड़ी कर दी है। आज भी लगभग 30 लाख लोग इससे प्रभावित हो रहे हैं जिनमें से लगभग आधे लोगों को जान से हाथ धोना पड़ जाता है। एक नयी परियोजना के अंतर्गत हाल में एनाफ्लीज गेमवाई मच्छरों में 2600 लाख 'बेस पेअर' जीन की सीक्वेंसिंग करने की घोषणा हुई है। यह काम अमरीकी कंपनी सेलेरा जीनामिक्स और जीनोस्कोप एवं फ्रांसीसी नेशनल सीक्वेंसिंग सेंटर करेंगे। डॉ. स्टीवेन सिनकिन्स जो लीवरपूल स्कूल ऑफ मेडिसिन से जुड़े हैं, का कहना है कि यह सीक्वेंसिंग काफी मूल्यवान रहेगी क्योंकि इससे आण्विक जीन स्तर को बदलने में मदद मिलेगी। शोधकर्ताओं को मच्छरों के उन जीनों का पता चल जायेगा जो मलेरिया फैलाते हैं और साथ ही कीटनाशी प्रतिरोध पर भी नया प्रकाश पड़ सकेगा।

संकलन : डॉ. जी. पी. कोठियाल
तकनीकी भौतिकी एवं प्राख्य इंजीनियरी प्रभाग,
भा प अ केंद्र, मुंबई 400 085

कुछ पहेलियां

हरी-हरी डंडी
हरा हरा अंडा
जल्दी से बताओ
नहीं तो पड़ेगा डंडा। - *मटर*

देखा एक अनोखी रानी
मुंह से उगलती आग
दुम से पीती पानी। - *दीपक*

देखने में सुंदर गांठ गठेला
कद है छोटा-छोटा
खाने में बहुत रसीला भइया
खाने में बहुत रसीला। - *गन्ना*

आठ रानियां दो हैं राजा
नहीं झगड़ती हैं ये ज्यादा
हर काम में उनका साझा। - *अंगूठा व उंगलियां*

लकड़ी का घोड़ा
रस्सी छुड़ा कर दौड़ा
खूब डांस दिखाता भाई
बच्चों का मन हर्षाता। - *लट्टू*

प्रेषक : राजेश सिंह
म. न. - 151/डी जटेपुर रेलवे कॉलोनी,
गोरखपुर (उ. प्र.) - 273 012

कुछ फूल : कुछ कांटे

हिंदी के माध्यम से विज्ञान संचरण एवं लोकप्रियकरण की वर्तमान स्थिति में पत्रिका 'विज्ञान-पत्रिका' अहम् भूमिका निभा रही है, ऐसा 'वैज्ञानिक' (त्रै.) में प्रकाशित हुआ था। लेकिन साथ में पत्रिका की समीक्षा नहीं की गयी थी जिसके कारण जानकारी अधूरी रह गयी।

राजेंद्र प्रसाद 'मधुबनी'

फ्रेंडस कॉलोनी, मधुबनी - 847 211 (बिहार)

(यह भा प अ केंद्र के सहायक कर्मचारियों के हित में प्रकाशित एक छोटी पत्रिका है और कर्मचारियों में ही वितरित की जाती है। इसका कोई मूल्य नहीं है।-सं)

'वैज्ञानिक' के अक्तूबर-दिसंबर 2000 अंक के तीसरे आवरण पर 'रचनाकारों से निवेदन' में लगभग सभी बिंदुओं से सहमत हूं, हां, बारहवें में चंद्रबिंदु के प्रयोग को भी उचित मानता हूं। तथाकथित अरैबिक या अंग्रेजी अंक शतप्रतिशत भारतीय हैं जो अरब-यूरोप के रास्ते से अब अंतर्राष्ट्रीय बन कर कल्पना चावला और हरगोविंद खुराना की भांति भारतीयों को गौरवांवित करते हैं अत: इन अंकों का प्रयोग न करना भारतीयता के विरुद्ध है। 'और' के जगह पर "&" इस चिन्ह का तथा इ ई उ ऊ ए ऐ के लिए अि, अी, अु, अू, अे, अै, लिखना हिंदी के हित में होगा।

आर्य प्रहलाद गिरि,

विज्ञान वाचस्पति, शिक्षा विशारद,

शिव मंदिर, निंगा, आसनसोल -713 370 (प. बं.)

आपके द्वारा प्रेषित 'वैज्ञानिक' पत्रिका का अक्तूबर-दिसंबर 2000 अंक प्राप्त हुआ। जड़ी-बूटियों से संबंधित लेखों से भरपूर यह अंक हमें अत्यंत ही अच्छा लगा। सचमुच में आपका संस्थान इस पत्रिका के माध्यम से विज्ञान को सरस भाषा में जनमानस तक पहुंचाने में अहम भूमिका निभा रहा है।

डॉ. बृजलाल

हिमालय जैवसंपदा प्रौद्योगिकी संस्थान,

सी. एस. आई. आर., पो. बॉ. नं. 6,

पालमपुर - 176 061 (हि. प्र.)

'वैज्ञानिक' का जनवरी-जून 2000 अंक प्राप्त हुआ। सभी रचनाओं का प्रकाशन अति सुंदर ढंग से हुआ है। रचनाएं स्तरीय हैं। कुशल संपादन के लिए बधाई।

मैं इस पत्रिका से 1979-80 से जुड़ा रहा हूं और उस दिनों आयोजित होने वाली प्रतियोगिताओं में मुझे नियमित रूप से पुरस्कार भी प्राप्त होते रहे हैं। नियमित ग्राहक होने के कारण लगभग 10 वर्ष के अंक अभी भी मेरे पास सुरक्षित हैं। उस समय मेरी रचनाएं नरेश चंद्र 'पुष्प' के नाम से 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित होती थीं।

एक लंबे अंतराल के बाद घर में 'वैज्ञानिक' का अंक पाकर बहुत ही प्रसन्नता हुई। राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान लखनऊ में पत्रिका नियमित रूप से पढ़ने को मिल जाती है। उक्त अंक में मेरा नाम अशुद्ध छप गया है। नरेंद्र के बजाये नरेश होना चाहिए।

नरेश चंद्र तिवारी

लखनऊ

(हमारी भूल सुधार के लिए धन्यवाद - सं.)

'वैज्ञानिक' पत्रिका के अक्तूबर-दिसंबर 2000 अंक में प्रकाशित श्री राजेंद्र प्रसाद मधुबनी के पत्र की तरफ ध्यान आकर्षित करते हुए सूचित करना चाहता हूं कि श्री मधुबनी जो जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं उससे संबंधित एक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसका नाम संभवत: "विज्ञान पत्रकारिता" है। इसके लेखक संभवत: श्री मनोज पटैरिया हैं। इसमें देश से प्रकाशित लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं के नाम, पते इत्यादि पूर्ण विवरण प्रकाशित हैं और साथ ही विज्ञान पत्रकारिता, प्रशिक्षण, लेखन, संस्थान स्वयंसेवी संगठनों इत्यादि का विवरण भी है। यह पुस्तक नयी दिल्ली के किसी प्रकाशन से प्रकाशित हुई है। इसका पूरा पता संभवत: 'विज्ञान परिषद' इलाहाबाद से प्राप्त हो जाये। अन्य बंधु जो उक्त क्षेत्र में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं वे भी इस पुस्तक से लाभ प्राप्त कर सकते हैं। आशा है कि इससे श्री मधुबनी की आवश्यकता पूरी हो जायेगी।

विमलेश चंद्र

जूनियर इंजीनियर, रेलवे क्वार्टर - 80/M/A

पोस्ट-भावनगरपरा, जिला-भावनगर -364 003 (गुजरात)

'वैज्ञानिक' के अक्तूबर-दिसंबर 2000 अंक के अवलोकन के बाद मेरी टिप्पणियां इस प्रकार हैं :-

1) पत्रिका का अंक देर से मिलता है परंतु गुणवत्ता इतनी होती है कि अंक मिलने और पढ़ने के बाद सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं ।

2) पृष्ठ 26-28 पर नीम विषयक टिप्पणी उत्तम लगी । दुख इस बात का है हमारे पास ज्ञान है परंतु दूसरा कोई आकर हमें बतलाता है, उस ज्ञान और उसके उपयोग के बारे में । यह चिंतन का विषय है कि ऐसे ज्ञान का हम कितना उपयोग कर रहे हैं और पूरा उपयोग क्यों नहीं कर पा रहे हैं ?

3) आज की बड़ी समस्याओं में से दो हैं - कचरा और स्वास्थ्य । इसी संदर्भ में डॉ. दिनेशमणि का कचरे के बारे में और कई लेखकों का संयुक्त लेख 'आयुर्वेद के बदलते आयाम' उपयोगी लगे ।

4) मुखपृष्ठ पर सबसे ऊपर गहरी नीली पट्टी होने से उसमें छपा, सहज ही दिखाई नहीं पड़ता ।

विजय शर्मा,
2/4 मालवीय नगर, जयपुर - 302 017 (राज.)

---

(1)

'वैज्ञानिक' जनवरी-जून 2000 अंक प्राप्त हुआ । इस अंक में एक साथ इतने सारे महत्वपूर्ण और ज्ञानवर्धक लेखों का समावेश किया गया है कि मैं इसे व्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ । एक ओर जहां "काल से दिक्काल..." लेख में सीजियम परमाणु घड़ी, कॉस्मिक घड़ी अपनी गुणवत्ता को बताने के लिए बेताब है वहीं दूसरी ओर 'वैज्ञानिक विकास के कुछ आयाम' लेख में प्रकाश की गति का लगभग 200 लाख गुणा धीमी कर देने का समाचार विज्ञान के विकास से आयाम को चित्रित कर रहा है ।

कंप्यूटर वायरस के बारे में थोड़ी कुछ जानकारी थी, परंतु वायरस के प्रकार तथा इनको व्यापक प्रभाव क्षेत्र, आज हमें यह सोचने पर मजबूर कर रहा है कि कहीं हम विज्ञान को अभिशाप तो नहीं बना रहे हैं । वैज्ञानिक परिचय में इस बार 'प्रफुल्ल चंद्र राय' के बारे में पढ़ने को मिला । लेख अच्छा लगा ।

फोल्डेड आयन त्वरित्र-फोटिया (FOTIA) के बारे में संक्षिप्त जानकारी मिली । अगर आप मुख्य पृष्ठ पर दिये गये चित्र में FOTIA की आंतरिक संरचना को नामांकित कर देते तो शायद इसकी कार्यविधि को समझना और आसान हो जाता ।

आज हमारे देश में विज्ञान से संबंधित हिंदी में इतनी सारी पत्रिकाएं निरंतर प्रकाशित हो रही हैं यह जानकर मुझे आश्चर्य हो रहा है । इतनी लंबी सूची में मुझे पांच-छः पत्रिकाएं ही जानी पहचानी लगीं । क्या आप यह अनुमान लगा सकते हैं कि दूर-दराज गाँव में रहने वाले 'कल के भविष्य' को इनकी जरा भी जानकारी होगी ? आज हमारे देश में विज्ञान से संबंधित शोध-समाचार एवं अन्य जानकारियां इतनी सारी हिंदी तथा अनेक अंग्रेजी पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित हो रही हैं, परंतु 'विज्ञान प्रगति' के नये अंक (नवंबर-2000) में प्रकाशित लेख "क्यों नहीं है बच्चों की विज्ञान में रुचि" में वर्णित कई आंकड़े हमें यह सोचने को मजबूर कर रहे हैं कि भारत के छात्रों में विज्ञान का रुझान काफी कम हो रहा है, ऐसा क्यों ? एक आंकड़े के अनुसार 1997-1998 तक भारत में 182 विश्वविद्यालय, 39 समतुल्य विश्वविद्यालय तथा 10,555 कॉलेज हैं और उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या 70,78,214 है । इतने सारे छात्र कॉलेज की पढ़ाई कर रहे हैं परंतु ताज्जुब यह है कि आज विज्ञान में शोध करने वाले छात्रों (Ph.D.) का ग्राफ लगातार नीचे ही जा रहा है । बात सिर्फ इतनी ही नहीं है बल्कि कई आंकड़े यह दर्शाते हैं कि आज विज्ञान के इस युग में भी दिल्ली कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग जैसे नामी-गिरामी संस्थान में प्रवेश हेतु पांचवी बार सूची जारी करनी पड़ रही है । एक ओर जहां पूरे विश्व में विज्ञान सिर-चढ़ कर बोल रहा है वहीं भारत में ऐसी स्थिति क्यों ? मैं यह मान सकता हूं कि विज्ञान को जन साधारण तक पहुंचाने तथा उनमें विज्ञान के प्रति जागृति की भावना को भरने में आपकी पत्रिका काफी प्रयत्नशील है ।

विज्ञान लोकप्रियकरण एवं संचार के लिए सम्मानित/पुरस्कृत करने वाले संस्थान/संस्थाओं के बारे में जानकारी देकर आपने वास्तव में इस अंक को संग्रहणीय बना दिया

है। मेरे लिए तो यह गर्व की बात है कि विज्ञान परिषद प्रयाग, इलाहाबाद द्वारा दी जाने वाला 'विज्ञान वाचस्पति' सम्मान मेरे पिताजी 'डॉ. चतुर्भुज साहु' को भी मिला है।

आपने हिंदी के माध्यम से विज्ञान संचरण एवं लोकप्रियकरण के परिप्रेक्ष्य में विज्ञान परिषद प्रयाग, इलाहाबाद का उल्लेख किया है। वास्तव में इस परिषद की स्थापना '10 मार्च 1913 ई.' को हुई है जबकि आपने अपने संपादकीय में इसकी स्थापना वर्ष, 1914 बतायी है। संपादकीय में ऐसी गलती नहीं होनी चाहिए। यहां से 'विज्ञान' पत्रिका का पहला अंक (पत्रिका अब तक लगातार प्रकाशित हो रही है।) "अप्रैल,1915" को प्रकाशित हुआ है। "विज्ञान-अप्रैल 1915" देखने को मिला। मुझे वहां से काफी प्रेरणा मिली।

इस अंक में हिंदी से विज्ञान में प्रचार प्रसार से संबंधित जानकारियों को प्रस्तुत करने के लिए आपको तथा समूचे संपादकीय मंडल को मेरा धन्यवाद। आशा है आगे भी हमें विचारणीय तथ्य पढ़ने को मिलेंगे।

(2)

वैज्ञानिक का नया अंक (अक्तूबर-दिसंबर 2000) प्राप्त हुआ।

'प्रदूषण रोकने में कारगर गैस प्लाज्मा' टिप्पणी ने मुझे एक बार पुनः कलम उठाने को मजबूर किया। पर्यावरण को शुद्ध रखने में प्लाज्मा प्रौद्योगिकी भी कारगर सिद्ध हो सकती है जानकर अच्छा लगा। सबसे अधिक ध्यान देने वाली बात यह है कि हमारे बहुत सारे विश्वविद्यालयों में भी बड़े ही महत्व के शोध होते रहते हैं परंतु इनकी जानकारी आम लोगों तक नहीं जा पाती है। उदाहरण के तौर पर आप पटना विश्वविद्यालय को ही लें। यहां पर भौतिक विभाग की प्लाज्मा लैब में 5000 K तापक्रम तक की प्लाज्मा आर्क देखी जा सकती है। क्या यह कम महत्व की बात है लेकिन इस तरह की जानकारी बहुत कम लोगों को मालूम हो पाती है। ऐसा क्यों ?

भा. प. अ. केंद्र का राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय के साथ मिलकर अनुसंधान कार्य करने का समाचार काफी अच्छा लगा। सच्चाई यह है कि शोध संस्थान का इस तरह का सहयोग ही उसकी वास्तविक जरूरत है।

अन्य लेख भी अच्छे हैं; खास कर विज्ञान कविता। आपने यह भी लिखा है कि 'वैज्ञानिक' को रियायती डाक दर से भेजने पर परिषद को कठिनाई हुई। कारण पंजीकरण प्रमाण पत्र का उपलब्ध न होना है। इस समस्या का समाधान आप जल्द से जल्द कर लेंगे, इसी आशा के साथ।

कृषिचयन,
द्वारा डॉ. चतुर्भुज साहु, विभागाध्यक्ष,
मानव विज्ञान विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय,
पोस्ट बॉक्स - 31, हजारीबाग - 825 301 (झारखंड)

'वैज्ञानिक' का अक्तूबर-दिसंबर-2000 अंक मिला। विज्ञान कथा स्तंभ की शुरुआत अच्छी है। लेकिन इस अंक की विज्ञान कथा वास्तव में विज्ञान कथा नहीं है। क्योंकि इसमें विज्ञान तो कुछ है ही नहीं।

अंक की छपाई और सामग्री उच्च स्तर की है। चित्र और रेखाचित्र देना शुरू करें। इससे पत्रिका और रोचक, आकर्षक तथा लोकप्रिय होगी। संभव हो तो इसे मासिक करें।

विजय चितौरी
द्वारा 'गांव की नई आवाज',
घूरपुर, इलाहाबाद - 212 110 (उ. प्र.)

'वैज्ञानिक' का अक्तूबर-दिसंबर-2000 अंक प्राप्त हुआ। 'विज्ञान समाचार' के अंतर्गत आपने प्रकाशित किया है कि ऑर्थराइटिस के इलाज हेतु होलमियम-166 हाइड्रॉक्सी एपेटाइट कणों का विकास किया गया और एक अस्पताल में 25 रोगियों पर इसका इस्तेमाल किया जा चुका है। परंतु आपने यह नहीं लिखा कि उसका क्या प्रभाव हुआ और किस अस्पताल में, किस डॉक्टर के द्वारा ऐसा किया गया ?

मैं भी इस रोग से पीड़ित हूं, मेरे दोनों घुटनों में दर्द रहता है। चलने में बहुत तकलीफ है। कृपया विस्तृत जानकारी दें।

संत सरन वैश्य
द्वारा श्री सुखपाल सिंह, 8/321 पटेल नगर,
काशीपुर, ऊधमपुर नगर - 244 713 (उत्तरांचल)

एड्स दे रहा दस्तक

इन्सानों के शत्रु एड्स से, विश्व को मुक्त कराओ ।
इस महामारी से बचाव का, संदेश घर-घर पहुंचाओ ।।

एड्स दे रहा दस्तक, अपने घर को इससे बचाओ,
इस भयंकर व्याधि से, बचाव के साधन अपनाओ ।
रक्तदान से पूर्व रक्त का, उचित परीक्षण करवाओ,
सुरक्षित यौन संबंध का, संदेश घर-घर पहुंचाओ ।।

* * *

एच. आई. वी. संक्रमण से होते, भयक्रांत और त्रस्त लोग,
रोग प्रतिरोधक क्षमता समाप्त कर, आमंत्रित करता अनेकों रोग ।।
इससे सीधे संबंधित है, चरित्र, व्यसन, रक्तदान व संभोग,
बचाव के साधन अपना कर, रहें सभी स्वस्थ और निरोग ।।

* * *

निरोध का करें प्रयोग, रोगी से यौन संबंध न बनाओ,
असमान्य, समलैंगिक, मैथुन, वैश्या गमन को न अपनाओ ।
पति-पत्नी के मध्य यौन संबंध, सदैव ही सुखदायी होगा,
सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यतिक्रम, बड़ा ही दुखःदायी होगा ।।

* * *

पर्याप्त शुद्धिकरण करके, उपकरणों का उपयोग करो,
सुरक्षित रहना है तो डिस्पोजेबल, सीरिंज ही प्रयोग करो ।
स्वास्थ्य शिक्षा का प्रचार कर, जन-जन में जागरूकता लाओ,
भ्रांतियों को दूर कर बचाव का, संदेश घर-घर पहुंचाओ ।।

वजन में कमी, क्षुधा में गिरावट, एक माह से अधिक ज्वर आना,
चर्म दोष, बार-बार दस्त, सफेद छाले, लंबी खांसी का आना ।
गिल्टियों का बढ़ना, रोग प्रतिरोधक शक्ति का लोप हो जाना,
न्यूमोनिया, क्षय रोग, हरपीज, मैनिन्जाइटिस का प्रकोप हो जाना ।

* * *

जिसको संक्रमित किया एड्स ने, वह तो एक दिन जायेगा,
मानवता के लिए वह एक, संदेश छोड़ता जायेगा ।
पति-पत्नी के पावन रिश्ते की, सीमा को जो तोड़ेगा,
वह अपने घर परिवार के, सुख चैन से मुँह मोड़ेगा ।।

* * *

यह नहीं होता रोगी से हाथ मिलाने, उसके साथ बात करने से,
उसके साथ खाने, खेलने से, साथ-साथ कार्य करने से ।
रोगी के वस्त्र, बर्तन, भोजन से, उसके खांसने या छींकने से,
रोगी मां के स्तन पान से, या रोगी संग यात्रा करने से ।।

* * *

घर-घर, विद्यालयों, कार्यालयों, निजी प्रतिष्ठानों में जायें,
सभी धर्म, जाति, आयु, व्यवसाय या समुदाय वालों को बतलायें ।
गरीब-अमीर, पढ़े-अनपढ़, बचाव के साधन अपनायें,
बचाव ही श्रेष्ठ साधन है, यह बात घर-घर पहुँचायें ।।

डॉ. वी. के. तिवारी
एम. डी.,वरिष्ठ परामर्शदाता, जिला चिकित्सालय आगरा,
5 ओम विहार, शास्त्री नगर, आगरा -282 002

"वैज्ञानिक" के पूर्व प्रकाशित अंकों की अनुक्रमणिका (2000)

जनवरी-जून 2000 (वर्ष 32, अंक 1/2)

संपादकीय

हिंदी के माध्यम से विज्ञान संचरण एवं लोकप्रियकरण : वर्तमान स्थिति 3
- डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

लेख

1. जीन का लक्ष्यीकरण एवं प्रतिस्थापना 5
   - अखिलेश कुमार तिवारी
2. हृदय की संरचना एवं बीमारियाँ 16
   - कु. मिता चटर्जी एवं कु. गीता चटर्जी
3. काल से 'दिक्काल' : तथ्य और चुनौतियाँ 23
   - डॉ. कपूर मल जैन
4. पर्यावरण प्रदूषण रोकने में सहायक है - हरित पट्टी 36
   - नरेंद्र चंद्र तिवारी
5. सुदूर संवेदन तकनीक : प्रगति और मानव जीवन में उपयोगिता 45
   - सुनीता हरीश भंडारी
6. दक्षिण-ध्रुवीय प्रदेश के ऊपर बासंतिक ओजोन वायु-पतन - एक समस्या ! 51
   - अशोक श्रीधर रसाल
7. वैज्ञानिक विकास के कुछ आयाम 60
   - संजय कुमार पाठक
8. उष्ण कटिबंधीय चक्रवात 63
   - नरेंद्र रामगोपाल व्यास
9. भारतीय चिकित्सा पद्धति में लाख का प्रयोग 68
   - डॉ. अजित कुमार सेन
10. कंप्यूटर वायरस - एक भयंकर संक्रमक समस्या 70
    - ओम प्रकाश सप्रा एवं अरुण दिनकर धर्म
11. मधु-उत्पादन में गढ़वाल हिमालय के मकरंद पादपों का महत्त्व 80
    - डॉ. आर. डी. गौड़ एवं पी. तिवारी

नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों ?

1. फेम्टो- रासायनिकी 86
   - डॉ. अविनाश सप्रे
2. क्षीण विद्युत (इलेक्ट्रो-वीक) बलों का क्वान्टम मॉडल 94
   - डॉ. अविनाश धर

टिप्पणियां

1. फूलों में रंग तथा गंध का राज है - रसायन 98
   - डॉ. डी. डी. ओझा
2. एल्केलॉइड विष या अमृत 99
   - डॉ. डी. डी. ओझा
3. बोतल से फिर बाहर आता क्षय रोग का दानव 100
   - डॉ. राज किशोर
4. धातु विलगन में कारगर है सूक्ष्मजीव तकनीक 104
   - डॉ. दिनेश मणि

विज्ञान कविता

पर्यावरण 105
- दिलीप भाटिया

वैज्ञानिक परिचय

119

प्रफुल्ल चंद्र राय
- कुमारी नीतू साहू

पूर्व प्रकाशित अंकों की अनुक्रमणिका (1994-95)

125

जुलाई-सितंबर 2000 (वर्ष 32, अंक 3)

संपादकीय

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में स्वाभाविक सामंजस्य वांछनीय 3
- डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

लेख

1. कैंसर का प्रादुर्भाव कैसे होता है ? 5
   - कु. पूजा तिवारी
2. भारतीय खाद्य मसाले - आधुनिक संदर्भ 18
   - कंवल प्रीत कोटद्वार
3. कृषि रसायनों से पर्यावरण प्रदूषण एवं उसका स्वास्थ्य पर प्रभाव 22
   - डॉ. राकेश सिंह सेंगर

4. जैव पदार्थों का अवायवीय किण्वन : ऊर्जा का एक वैकल्पिक स्रोत - डॉ. रामदयाल साहू 26
5. भारतीय सेनाओं की खाद्य आपूर्ति में रक्षा खाद्य अनुसंधान की भूमिका एवं योगदान - डॉ. आलोक शाह 36

टिप्पणियां

1. गुरुत्वाकर्षण : अभी भी एक पहेली - सलाहुद्दीन अहमद 40
2. घातक है फ्लोराइड की अधिकता - डॉ. सीताराम सिंह 41
3. जानवरों पर प्रयोग : उचित - अनुचित ? - डॉ. सीताराम सिंह 42
4. हरी खाद बनाने के उपाय - डॉ. एन. के. बोहरा 44

मानव स्वास्थ्य

1. उच्च रक्त दाब : जीवन शैली से संबंधित एक विकार - रोकथाम एवं प्रबंधन - डॉ. आशा दामोदरन 47

विज्ञान-कथा

समस्थानिक - डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय 54

घटनाक्रम

जलता आसमान - राजकुमार जैन 56

विज्ञान कविता

यह पृथ्वी का भाग्य - स्वाप्निल भारतीय "आर्नी" 62

अक्तूबर-दिसंबर 2000 (वर्ष 32, अंक 4)

संपादकीय

गोपनीय आंकड़ों की क्वांटम सुरक्षा - डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल 3

लेख

1. मादक पदार्थ - उपयोग एवं दुरुपयोग - डॉ. अवधेश शर्मा 5
2. कचरे से कंचन की असीम संभावनाएं - डॉ. अवधेश शर्मा 10
3. आयुर्वेद के बदलते आयाम - रिपुदमन कुमार, डॉ. संजीविना भंडारी, संदीप पठानिया एवं डॉ. ब्रजलाल 22

टिप्पणियां

1. प्रदूषण रोकने में कारगर गैस प्लाज्मा - डॉ. विजयेंद्र नारायण 25
2. नीम : आधुनिक कीटनाशकों का सर्वोत्तम विकल्प - विजय चितौरी 26
3. औषधीय महत्व की अमूल्य वनस्पतियां - डॉ. एन. के. बोहरा 28
4. दालचीनी - एक उपयोगी घरेलू औषधि - डॉ. एन. के. बोहरा 31
5. उत्तरांचल के कलात्मक फर्न - मोहन चंद्र कबड़वाल 32

विज्ञान नाटक

'पुष्पक रथ पर भानु और पार्वती' - गोरा चक्रबर्ती 18

विज्ञान-कथा

कौन मयूर है सबसे हल्का ? - गोविंद प्रसाद शर्मा 23

विज्ञान कविता

1. परमाणु - अनंत भट 24
2. परमाणु बिजली घर - दिलीप भाटिया 33
3. भारत का विज्ञान - ऊषा द्विवेदी 'राज' 47

पूर्व प्रकाशित अंकों की अनुक्रमणिका (1997-99)

48

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

कार्यकारिणी

(कार्यकाल : 2001-03)

अध्यक्ष	:	श्री सुरेंद्र कुमार शर्मा
उपाध्यक्ष	:	डॉ. अशोक कुमार सूरी
सचिव	:	श्री रमेश चंद्र पंत
सह सचिव	:	श्री स्वराज कुमार अग्रवाल
कोषाध्यक्ष	:	श्री नंद लाल सोनी

: *सदस्य* :

डॉ. सुधाकर कोकाटे,
श्री दिनेश कुमार शुक्ल,
श्री जय प्रकाश त्रिपाठी,
श्री बी. पी. बड़गुजर,
श्री सत्य बाबू शेट्टी,
श्री राम नरेश शर्मा

रचनाकारों से निवेदन

कृपया प्रकाशनार्थ पांडुलिपि तैयार करते समय संपादन की सुविधा के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें :

1] (क) विभक्तियों को शब्दों से अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'राम ने', 'मेज पर', 'लड़कों को'
(ख) सर्वनामों की सभी विभक्तियों को मिला कर लिखा जाये-
उदाहरण - 'उसने', 'मैंने', 'उनका', 'हमसे'
(ग) जिन सर्वनामों के अंत में 'ही' अथवा 'ई' लगा हो, उनकी विभक्तियों को अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'इसी से', 'तुम्हीं को', 'सभी को'

2] पूर्वकालिक क्रियाओं के 'कर' को अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'जा कर', 'आ कर', अन्यथा 'कर' मिलाकर लिखें ।

3] संयुक्त क्रियाओं में दोनों अंशों को अलग-अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'आ गया', 'चल पड़ा', 'हो सका'

4] जिन भूतकालिक कृदंत क्रियाओं अथवा विशेषणों का अंत 'या' से होता है, उनके स्त्रीलिंग और बहुवचन रूपों में 'य' का ही प्रयोग किया जाये -
उदाहरण - 'गया, गयी, गये', 'नया, नयी, नये', 'आया, आयी, आये', 'लाया, लायी, लाये', 'पाया, पायी, पाये', 'खाया, खायी, खाये', 'किया, किये' आदि ।
दृष्टव्य है कि 'भाई', 'लाई', 'पाई' आदि संज्ञाएं हैं । भविष्यकाल में ये रूप निम्न प्रकार होंगे - आयेगा, पायेगा, लायेगा, जायेगा आदि । आवेगा, जावेगा आदि प्रयोग ठीक नहीं हैं ।

5] 'हुआ' जैसी जिन क्रियाओं के अंत में 'आ' है उनके स्त्रीलिंग 'हुई' व बहुवचन 'हुए' के अनुसार होना चाहिए ।

6] 'लिये/लिए' : 'लिये' को 'लिया' का बहुवचन रूप मानें और 'लिए' को विभक्ति चिन्ह ।
'चाहिये/चाहिए' : 'चाहिए' ही लिखा जाये ।

7] 'एसा/ऐसा' : 'ऐसा' लिखा जाये ।
'दिखाई/दिखायी' : 'दिखाई' संज्ञा रूप मानें और 'दिखायी' भूतकालिक क्रिया (स्त्रीलिंग) । *उदाहरण* - 'सांप दिखाई पड़ा', 'मैंने उसे पुस्तक दिखायी' इसी प्रकार 'पढ़ाई' और 'पढ़ायी' में भी अंतर करें ।

8] आदरार्थ आज्ञा रूपों में संभावनार्थक क्रियाओं में 'ए' ही लिखा जाये -
उदाहरण - 'आइए', 'खाइए', 'जाइए', 'समझिए', 'कीजिए', 'रखिए' आदि ।

9] अनुस्वार और अनुनासिक ध्वनियां : 'संयुक्त व्यंजन' की अनुनासिक ध्वनि को 'अनुस्वार' के द्वारा दर्शाया जाना चाहिए - वर्ग का प्रत्येक पंचम वर्ण यथा, ङ ('क' वर्ग), ञ ('च' वर्ग), ण ('ट' वर्ग), म ('प' वर्ग), व न ('त' वर्ग) अनुनासिक ध्वनियां हैं ।
अनुस्वार स्थापन का नियम इस प्रकार है : जिस किसी अक्षर के आगे यदि उसी वर्ग की अनुनासिक ध्वनि है तो उसे अनुस्वार (बिंदी) से बदला जा सकता है;
उदाहरण - कंगन, अंक, व्यंजन, रंजन, ठंडा, डंडा, पंडित, कंपन, पंप, बंद, परंतु, किंतु, मृगांक, दंडित, संबंध, अंत आदि ।
इस नियम का प्रयोग ध्यानपूर्वक करना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है । जन्म, मान्य, समन्वय, सम्मति आदि शब्द वैसे ही रहेंगे ।

10] एकवचन से बहुवचन - 'या' से 'ये', 'ए' नहीं । जैसे, रुपया - रुपये, हंसिया - हंसिये ('हंसिए' आदरार्थ आज्ञा रूप होगा)

11] संस्कृत के जो शब्द हिंदी में तत्सम रूप में प्रचलित हैं, उनमें 'य' का व्यवहार उचित है । जैसे, अस्थायी, बाजपेजी, उत्तरदायी आदि । इन्हें अस्थाई, बाजपेई, उत्तरदाई लिखना न तो व्याकरण सम्मत है और न व्यावहारिक ।

12] चंद्र-बिंदु का प्रयोग - छपाई की सुविधा के लिए चंद्र-बिंदु की ज़गह अनुस्वार का प्रयोग किया जाये । जैसे, अंधा, आंख, अंगना, चांद, मां, पहुंचना, हां आदि ।

13] संख्याओं को अरैबिक (अंग्रेजी) में लिया जाये - 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 0

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा श्री गोरा चक्रवर्ती द्वारा प्रिंट शॉप, चेंबूर, मुंबई (फोन : 555 2348 / 556 6284) में मुद्रित व प्रकाशित ।

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) **R. No. : 18862/7(**

दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र , हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 2000

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित **हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता** हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं । लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए । लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है । **मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ-साथ अच्छे रेखाचित्रों / फोटोग्राफ, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्व दिया जाता है ।** अतः चित्रों को अलग से सफेद कागज / ट्रेसिंग पेपर पर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें । फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हों तो उचित रहेगा । इन्हें लेख के अंत में संलग्न करें । नीचे दिये गये पते पर कृपया दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000 - 4000 शब्द) भेजें ।

अंतिम तिथि : 15 जनवरी 2002

पुरस्कार :

प्रथम - 2000/= रु.

द्वितीय - 1500/= रु.

तृतीय - 1000/= रु.

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं अहिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार 500/- रु (प्रत्येक) के दिये जायेंगे । अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें ।

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं "वैज्ञानिक" की संपत्ति होंगी । "वैज्ञानिक" पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे ।

प्रविष्टियां भेजने का पता :

श्री गोरा चक्रवर्ती, प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक "वैज्ञानिक",
रिएक्टर सुरक्षा प्रभाग (RSD), हॉल -7 (Hall-7),
भा. प. अ. केंद्र (BARC), मुंबई - 400 085